* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,८५,०००)

विषय-सूची

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष, वि०-सं० २०४९, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१८, नवम्बर १९९२ ई०

चित्र-सूची

प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य भारतमें २.५० रु० विदेशमें २० पेंस

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य (डाक-व्ययसहित) भारतमें ५५.००रु० विदेशमें ९ डालर (अमेरिकन)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
रामदास जालान द्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित
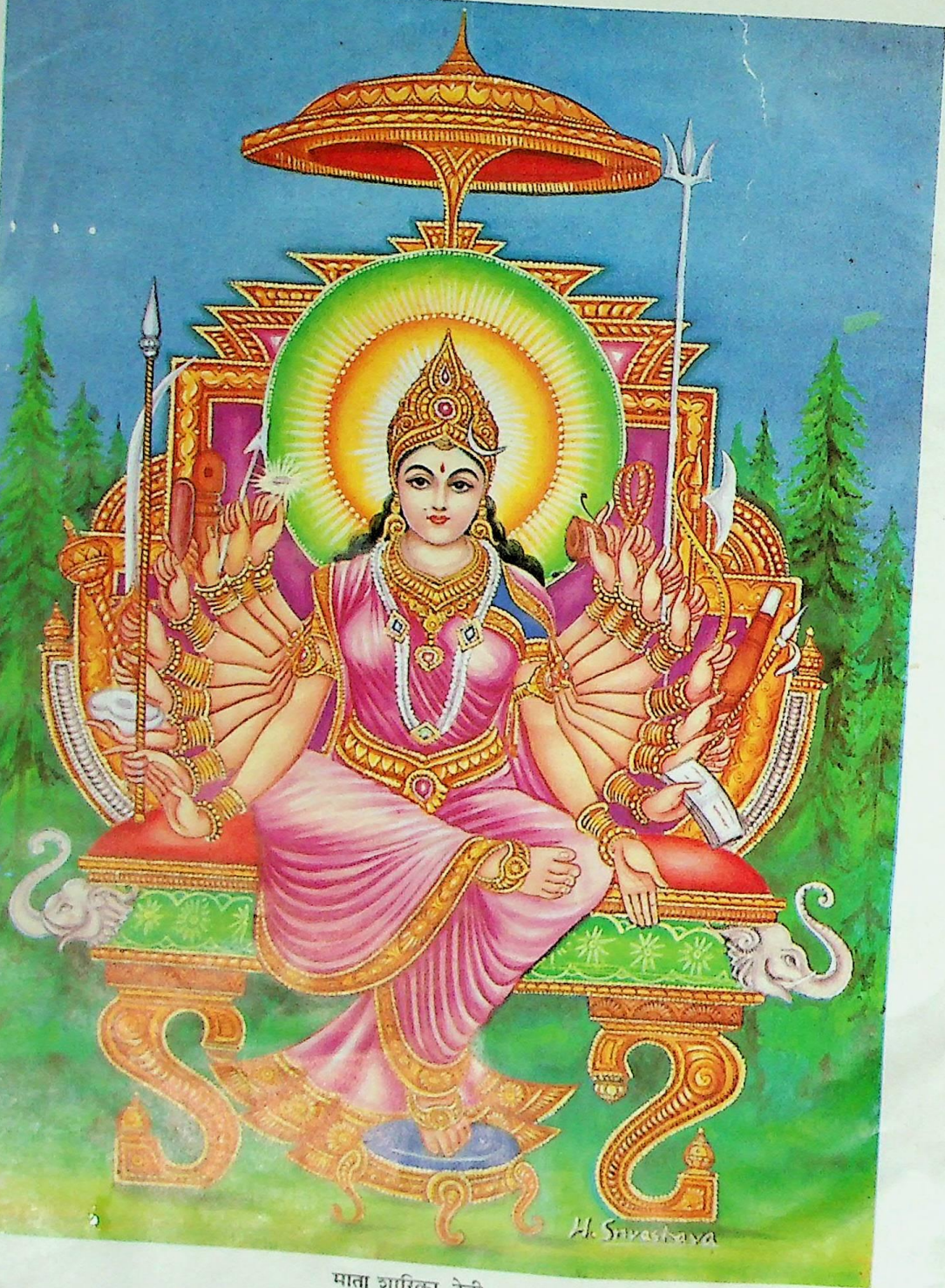
माता शारिका देवी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
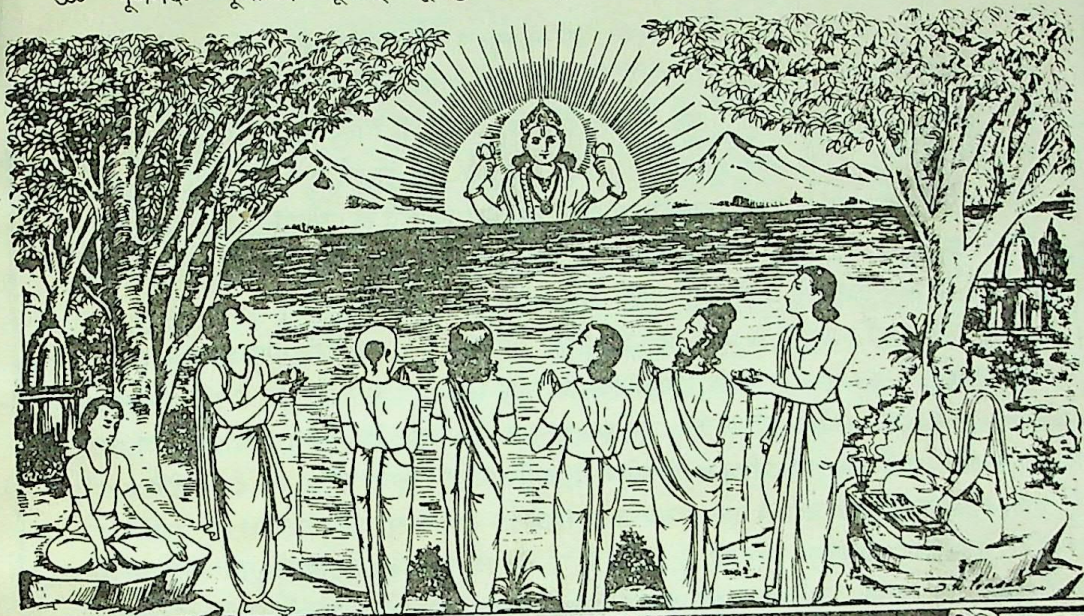
एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर॥

वर्ष ६६ | गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष, वि॰सं॰ २०४९, श्रीकृष्ण-सं॰ ५२१८, नवम्बर १९९२ ई॰ | संख्या ११ | पूर्ण संख्या ७९२

माता शारिका देवी

खड्ग परशु, खट्वांग, गदा, अंकुश, त्रिशूल वर।
डमरु, पाश, पुस्तक, तोमर, मूसल, शुभ मुद्गर॥
चक्र, बाण, शुचि धनुष, अभय-वर मुद्रा धारण।
नरकपाल अष्टादशभुज शशि-शिर शुभ कारण॥
शोभित आभूषण-वसन अंग-अंग अति द्युति बिमल।
सकल सुमंगल मूल मृदु मातु शारिका-पद-कमल॥

कल्याण

अंधेकी तरह इधर-उधर ठोकरें खाकर इस महामूल्य मानव-जीवनको व्यर्थ ही क्यों नष्ट कर रहे हो, क्यों रात-दिन दुःखोंसे छटपटाते हो ? आठों पहर सुखके लिये 'हाय ! हाय !' करते हो— सोते-जागते सब समय प्रमादमें पड़े तड़पते रहते हो, कहीं भी मिला सुख ? जिसको भी सुख समझकर छातीसे लगाने जाते हो, वही दुःखकी ज्वालासे तुम्हें झुलस देता है। जहाँ भी सुखकी कल्पना करते हो, वहीं दुःखकी चट्टानसे टकराकर चूर- चूर हो जाते हो। मानमें-यशमें, धनमें-जनमें, स्त्रीमें-स्वामीमें, पुत्रमें-कन्यामें कहीं भी दर्शन हुए सुखके ? कहीं नहीं ! सभी जगह दुःख-ज्वाला है, सभी जगह भय-चिन्ता है ! तो क्या यहाँसे हट जानेपर सुख मिलेगा ?

हटकर कहाँ जाओगे ? जहाँ जाओगे, वहीं यही मिलेगा। हटनेकी आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है इस सत्यको समझ लेनेकी कि 'एकमात्र भगवान्में ही परम सुख है और वे भगवान् सर्वत्र, सर्वदा और सर्वथा परिपूर्ण हैं।' जब इस सत्यका साक्षात्कार हो जायगा, तब सभी देश, सभी काल और सभी अनुकूल-प्रतिकूल दीखनेवाली परिस्थितियोंमें तुम्हें भगवान्के दर्शन होंगे। तभी तुम—इस प्रकार सब ओरसे सब समय उन्हें पाकर ही यथार्थ सुखकी उपलब्धि कर सकोगे।

जगत्में तुम जो इतने जल रहे हो, सर्वत्र ही जो अभाव, भय, दुःख और विनाशका ताण्डव नृत्य दिखायी पड़ रहा है—इसका कारण यही है कि तुम भगवान्से शून्य जगत्को देखते हो। जहाँ भी भगवान्का अभाव माना जाता है, वहीं तमाम अभाव, तमाम भय, तमाम दुःख और तमाम विनाश अपनी सारी भयावनी सेनाको साथ लिये डेरा डाले पड़े रहते हैं। इन शत्रुओंके घेरेसे तुम तबतक नहीं निकल सकते, जबतक कि तुम भगवान्को सर्वत्र परिपूर्ण समझकर उनके दर्शन न पा लो।

भगवान् सर्वत्र हैं, इसलिये नित्य तुम्हारे साथ हैं। उनको देखकर सदाके लिये सुखी हो जाओ। तुम ऐसा कर सकते हो। सत्यस्वरूप तुमको सत्यकी प्राप्तिका पूर्ण अधिकार है। वह तो तुम्हारा ही स्वरूप है।

तुम चाहो तो सहज ही भगवान्की शक्तिके सहारे शान्तिसे अशान्तिको, आनन्दसे शोकको, वैराग्यसे आसक्तिको, ज्ञानसे मोहको, प्रकाशसे तमको, हर्षसे विषादको, आशासे निराशाको, अनुभवसे कल्पनाको और नित्य भगवद्भावसे सारे अभावोंको दूर कर सकते हो।

विश्वासपूर्वक प्रार्थना करते ही, स्मरण करते ही भगवान् तुम्हें अपनानेके लिये तैयार हैं। उनका अमल प्रकाश तुम्हारे जीवन-पथको सर्वथा प्रकाशित कर देगा और तुम सहज ही उनके मधुर मनोहर मुसकानभरे मुखड़ेको देखकर निहाल हो जाओगे।

विश्वास करो—इसी जीवनमें, इसी यात्रामें तुम अपनी अनन्त कालकी अपूर्ण कामनाको पूर्ण कर सकते हो, भगवान्को पाकर अपने अल्प, ससीम और दुःखमय जीव-जीवनको महान्, असीम, अनन्त और आनन्दमय बना सकते हो ! —*'शिव'*

भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका प्राचीन प्रवचन)

भगवान्‌का ध्यान करनेके लिये एकान्त और पवित्र स्थान होना चाहिये। जहाँ कोई विघ्न-बाधा न हो, कोई हल्ला-गुल्ला न हो, शान्त स्थान हो। आसन कुश या कम्बल अथवा दोनोंका ही हो। उसपर सुखपूर्वक पालथी मारकर स्थिरतासे बैठना चाहिये। बिलकुल हिलना-डुलना नहीं चाहिये, और यदि पासमें दूसरा कोई बैठा हो तो उससे थोड़ा अलग बैठना चाहिये। महर्षि पतञ्जलिने कहा है—'**स्थिरसुखमासनम्।**' आसन ऐसा होना चाहिये जिसपर स्थिरतापूर्वक—सुखपूर्वक अचल हो करके बैठा जा सके। भगवान्‌ने गीतामें बतलाया है—'**समं कायशिरोग्रीवम्।**' काया, सिर और गला एक सीधमें रखना चाहिये—सम रहना चाहिये तथा मेरुदण्ड सीधा रहना चाहिये। आसनपर बैठनेके बाद मनमें संसारकी जो नाना प्रकारकी कामनाएँ हैं, उन सबको एकदम चेष्टासे दूर कर देना चाहिये और आसक्तिसे भी रहित हो जाना चाहिये। संसारमें सुख-बुद्धि होनेसे ही उनमें आसक्ति और विषयोंका चिन्तन होता है। आसक्ति होनेसे ही उनमें कामना उत्पन्न होती है। संसारमें कहीं आसक्ति न हो तो कामना भी नहीं होती। संसारके पदार्थोंमें सुख-बुद्धि अज्ञानसे है। वास्तवमें संसारमें सुख है नहीं। संसार परिणामी, विनाशशील और अनित्य है। इसलिये उसे भुला ही देना चाहिये। संसारको नाशवान् और क्षणभङ्गुर समझकर संकल्परहित हो जाना चाहिये। यदि इसमें किंचित् भी सत्ता या आसक्ति हो तो उसे दूर कर देना चाहिये और फिर ध्यान करना चाहिये। यह समझना चाहिये कि भगवान् निर्गुण-निराकार-रूपमें सदा-सर्वदा-सर्वत्र हैं ही। और यही भगवान् सगुण-निराकारके रूपमें प्रकट होते हैं, फिर सगुण-साकारके रूपमें प्रकट होते हैं। जैसे आकाशमें निराकार-रूपमें सदैव जल रहता है और वही जल भापके रूपमें प्रकट हो करके बादलोंका रूप धारणकर जल तथा बर्फके रूपमें बरसने लगता है। विचार करना चाहिये कि आकाशमें जो निराकार-रूपमें जल है, वही जल बादलके रूपमें, बूँदोंके रूपमें और बर्फके रूपमें भी है। इसी प्रकारसे जो निर्गुण-निराकार परमात्मा है, वह सगुण निराकारके रूपमें प्रकट होकर फिर महान् प्रकाशके रूपमें, सगुण-साकारके रूपमें प्रकट हो जाते हैं तो धातुसे विचार करनेपर सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार भगवान्‌के सभी रूप एक ही हैं।

एक सत्-चित्-आनन्द परमात्माके अतिरिक्त अन्य कोई दूसरी वस्तु नहीं है। यदि कहें कि जल तो विकारी है तो क्या भगवान् भी विकारी हैं? ब्रह्म तो निर्विकार है, उसमें कोई विकार नहीं होता। विकारसे भरे अज्ञानी मनुष्योंको अपना विकार ब्रह्ममें दीखता है। उसमें तो कोई विकार है ही नहीं। जैसे आकाश एकदम निर्मल है, उससे भी बढ़कर भगवान् निर्मल हैं। भगवान्‌के जो भक्त हैं, वे भगवान्‌के सगुण-साकार-रूपको देखना चाहते हैं। उनके प्रेमके कारण निराकार भगवान् साकार-रूपमें आ जाते हैं। उन भगवान्‌के जो गुण हैं सभी दिव्य और चेतन हैं। भगवान्‌का जो साकार रूप है वह भी चेतन है। जब कभी भगवान् अवतार लेते हैं, तब अपने ऊपर एक मायाका पर्दा डाल लेते हैं और असली रूप छिपा लेते हैं, परंतु भक्तोंके सम्मुख अपना असली रूप प्रकट कर देते हैं, जिससे भक्तोंकी दृष्टि भी दिव्य हो जाती है, इसलिये वे भगवान्‌के उस दिव्य सगुण स्वरूपको देख सकते हैं।

यदि कहो कि भगवान्‌का जो स्वरूप अलौकिक, दिव्य और चिन्मय गुणोंसे सम्पन्न है, फिर ऐसे भगवान्‌का स्वरूप सगुण-साकारके रूपमें कैसे प्रकट हो जाता है? तो इसका उत्तर यह है कि भक्तोंके प्रेमके कारण। तो भक्तोंके प्रेमके कारण भगवान् आ जाते हैं यह तो कोई युक्ति-संगत बात नहीं है। निर्गुण-निराकार ब्रह्म सगुण-साकारके रूपमें आ जावें यह उनकी लीला है। भगवान् असम्भवको भी सम्भव कर सकते हैं, उनके लिये कोई भी बात असम्भव नहीं है। समस्त साकार पदार्थ पहले निराकार ही थे। '**अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः**' (गीता ८। १८)। इस अव्यक्तकी सारी व्यक्तियाँ उस अमूर्तसे सारी मूर्तियाँ मूर्त हुई हैं। मूर्तिमान् जितने पदार्थ हैं, उनके दो रूप प्रत्यक्ष देखनेमें आते हैं। जैसे मैंने जलके विषयमें कहा, वैसे ही अग्निके विषयमें समझें। अग्नि जो दियासलाईमें व्याप्त है वह निराकार है। घिसनेसे वह प्रकट हो जाती है—साकाररूपमें आ जाती है। इसी प्रकारसे पृथिवीका जो आदि रूप है वह निराकार ही है, फिर वह साकार-रूपमें

आ जाता है। तो सभी साकार पदार्थ पहले निराकार थे, किंतु अब साकार-रूपमें आ गये, पर ये पदार्थ विकारी हैं। परमात्मा तो निर्विकार हैं। वे अपनी प्रकृतिको वशमें करके योगमायासे प्रकट हो जाते हैं। उनका यथार्थ रूप सबको दिखायी नहीं देता—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।

(गीता ७। २५)

भगवान् कहते हैं, मैं सबको दिखायी नहीं देता हूँ। योगमायासे आवृत होकर रहता हूँ। **'मूढोऽयं नाभिजानाति'** मूढ़ पुरुष मुझे नहीं जानते हैं। **'लोको मामजमव्ययम्।'** मैं जो अज और अविनाशी हूँ, ऐसे मुझ परमात्माको मूढ़ लोग नहीं जानते। भक्तलोगोंके सामनेसे वह पर्दा हटा लेता हूँ, अतः वे हमारा असली रूप देख पाते हैं। भगवान्का साक्षात्कार होनेमें प्रेम ही असली कारण है। जहाँ प्रेम होता है, वहीं भगवान् प्रकट हो जाते हैं। रामचरितमानसके बालकाण्डमें देवताओंकी सभामें शिवजीने यही कहा है—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

अर्थात् हरि—परमात्मा सब जगह पूर्णरूपसे व्याप्त हैं, वे प्रेमसे ही प्रकट होते हैं। **'हरिर्हरति पापानि'** हरि शब्दका अर्थ है हरना। 'हरि' शब्दके उच्चारणसे समस्त पाप दूर हो जाते हैं। 'हरि' शब्द परमात्माका नाम है और यह सभी पापोंको हरनेवाला है। इसलिये उनका नाम हरि है। वैसे तो भगवान्के अनेक नाम हैं—सच्चिदानन्द परमात्मा, सत्-चित्-आनन्दघनके बहुत-से नाम हैं, किंतु प्रभुका यह नाम विशेष है। कोई भी वेदका मन्त्र उच्चारण होता है तो **'हरिः ओ३म्'** इस प्रकार 'हरि' शब्द 'ओम्' शब्दके साथ उच्चरित होता है। इस कारण इसका महत्त्व भी विशेष है। शब्दार्थको देखते हुए भी 'हरि' शब्द विशेष महत्त्व रखता है। हमें इस शब्दसे उन्हें पुकारना चाहिये। वे हमारे सारे पापोंका नाश कर देंगे। परमात्मा सर्वत्र व्याप्त हैं।

भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान हमें प्रेमपूर्वक मुग्ध होकर करना चाहिये। क्योंकि भगवान् प्रेमसे साक्षात् प्रकट हो जाते हैं। जब हम अधिक तन्मय होकर भगवान्का ध्यान करते हैं तो भगवान् वहाँ उसी समय साक्षात् प्रकट हो जाते हैं। द्रौपदीने बड़े ही करुणभावसे दुर्वासामुनिके आगमनके समय भगवान्का ध्यान किया था और पुकार लगायी थी। उसने कहा था—'हे नाथ! हे गोपाल! हे गोविन्द! हे दामोदर!' इस तरह भगवान्के नामका कीर्तन किया तो उसी समय भगवान् एकदम प्रकट हो गये थे। जब कीर्तन करनेसे भगवान् प्रकट हो जाते हैं तो ध्यानमें प्रकट हो जायँ तो कौन बड़ी बात है। ध्यान करना तो हमारे अधीन है, हमें भी उसी प्रकार भगवान्का कीर्तन-ध्यान करना चाहिये।

सूरदासजी कहते हैं—

बाँह छुड़ाए जात हौ निबल जान के मोय।
हदय से जब जाओगे पुरुष बदूँगा तोय॥

आप हमें निर्बल जानकर बाँह छुड़ाकर जा रहे हैं, किंतु जब मेरे हृदयमेंसे जहाँ आप बसे हैं, उसमेंसे निकलकर जायँगे तो मैं आपको सामर्थ्यवान् समझूँगा, पुरुष समझूँगा। यह प्रेमसे उन्होंने कहा था। यह प्रेमसे विनोद है। इसे भगवान्का तिरस्कार नहीं समझना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करनेके पहले एकभावसे, समभावसे, न आगे न पीछे, न जोरसे न धीमे एक-दूसरेके लयमें लयको मिलाते हुए करुणभावमें मुग्ध हो करके भगवान्का बार-बार कीर्तन करना चाहिये—

'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव।'

भगवन्नामका कीर्तन करते समय ऐसी भावना करनी चाहिये कि भगवान् सगुण-निराकार-रूपमें सब जगह परिपूर्ण हो रहे हैं। भगवान्के जो दिव्य गुण हैं ये सब जगह समभावसे परिपूर्ण हैं। भगवान्का स्वरूप सत्-चित्-आनन्दघन है। भगवान्का स्वरूप सत् (सत्ता-रूप)से, चित् (बोधस्वरूप-ज्ञानस्वरूप) से और आनन्दस्वरूपसे सब जगह समभावसे स्थित हैं। उनका स्वरूप आकाशसे भी बढ़कर अनन्त, सम, निराकार और सर्वत्र व्याप्त है। वह परमात्मा आनन्दरूपसे सब जगह मौजूद है। जो चेतन है वही आनन्द है, जो आनन्द है वही चेतन है। संसारमें हमलोगोंको जो समभाव दीखता है यह सात्त्विक गुण है, या मायाका सात्त्विक भाव है, अतः इसे हम सात्त्विक गुण होते हुए भी जड़ कह सकते हैं। इस प्रकारसे आकाशकी जो अनन्तता है वह जड़ है। आकाशका स्वरूप चिन्मय और आनन्दमय नहीं है किंतु परमात्मा चेतनस्वरूप, ज्ञानस्वरूप और आनन्दस्वरूप है। भावरूप है,

प्रेमरूप है, अमृतमय है, आनन्दमय है, रसमय है—ये सभी शब्द भगवान्‌के स्वरूपकी बातें कहते हैं और स्वरूप ही गुणोंके रूपमें प्रकट होता है। इसलिये स्वयं भगवान् चेतन हैं और उनके गुण भी चिन्मय हैं। आप ध्यानसे देखें, सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द प्रतीत हो रहा है। मानो हमलोग अमृतरूप आनन्दके सागरमें डूबे हैं। यह जो शान्ति प्रतीत हो रही है यह भगवान्‌से होती है। अतः भगवान्‌का यह स्वरूप ही है। इस प्रकारसे भगवान्‌में क्षमा, शान्ति, समता, संतोष, सरलता आदि अनन्त दिव्य गुण हैं। जितने गुण हमलोगोंके दृष्टिगोचर होते हैं इनसे भी और अधिक गुण जिनको हम जानते भी नहीं उनमें मौजूद हैं। प्रकृतिका जो सात्त्विक भाव जिसे हम महत्तत्त्व कहते हैं, बुद्धि कहते हैं, उस बुद्धिरूप आइनेमें भगवान् प्रतीत हो रहे हैं। भगवान्‌के ये भाव प्रकट हो रहे हैं तो भगवान् वास्तवमें चिन्मय हैं, भगवान्‌के स्वरूपका, भावोंका, गुणोंका जो समूह है वह शुद्धबुद्धि और समत्वबुद्धिमें आता है। ये भावोंमें आनेसे सात्त्विक गुणके नामसे कहे जाते हैं। प्रकृति जड़ होनेके कारणसे उसको हम जड़ कहते हैं। किंतु जो बुद्धिके अन्तर्गत आते हैं, वे बुद्धिसे मिले होनेके कारण जड़-से प्रतीत होते हैं, किंतु वास्तवमें जो भगवान् बिम्बरूपसे हैं, चिन्मयरूपसे हैं, ये गुण नीचे-ऊपर, बायें-दायें सब ओर प्रत्यक्ष-रूपसे प्रकट हो रहे हैं। जैसे भगवान् निर्गुण-निराकार-रूपमें थे और सगुण-साकार दिव्य रूपमें आ गये, एक महान् प्रकाशके रूपमें जिसको नेत्रोंसे अनुभव कर सकते हैं। सूर्य उदय होनेके एक मिनट पहले जैसे संसारमें महान् प्रकाश हो जाता है, क्योंकि महान् प्रकाश भगवान्‌का स्वरूप है। उन्हींके प्रकाशसे ये सूर्य, चन्द्र और तारागण तथा बिजली आदि प्रकाशित होते हैं। वही एक महान् प्रकाशका पुञ्ज भगवान् श्रीकृष्णजीका दिव्य स्वरूप है और वही प्रकाशका पुञ्ज होनेसे साकार-रूपमें हमें दीखने लगता है। इसलिये भगवान् गोविन्दका आह्वान करना चाहिये। आह्वान करनेसे भगवान् एकदम प्रकट हो जाते हैं—

गोविन्द गोविन्द गोविन्द कृष्ण। गोविन्द गोविन्द गोविन्द हरे॥
कृष्ण मुरारे दीन बिहारे। गोविन्द गोविन्द गोविन्द हरे॥
गोविन्द गोविन्द गोविन्द कृष्ण। गोविन्द गोविन्द गोविन्द हरे॥
कृष्ण मुरारे नैनोंके तारे। गोविन्द गोविन्द गोविन्द हरे॥
गोविन्द गोविन्द गोविन्द कृष्ण। गोविन्द गोविन्द गोविन्द हरे॥
कृष्ण मुरारे मन के चुरारे। गोविन्द गोविन्द गोविन्द हरे॥
गोविन्द गोविन्द गोविन्द कृष्ण। गोविन्द गोविन्द गोविन्द हरे॥
कृष्ण मुरारे गोपियोंके प्यारे। गोविन्द गोविन्द गोविन्द हरे॥
गोविन्द गोविन्द गोविन्द कृष्ण। गोविन्द गोविन्द गोविन्द हरे॥
कृष्ण मुरारे प्रेम पियारे। गोविन्द गोविन्द गोविन्द हरे॥
गोविन्द गोविन्द गोविन्द कृष्ण। गोविन्द गोविन्द गोविन्द हरे॥
कृष्ण मुरारे दीन बिहारे। गोविन्द गोविन्द गोविन्द हरे॥

आनन्द है, आनन्द है, आनन्द है। देखो कैसा आनन्द हो रहा है। महान् प्रकाशके रूपमें प्रकट हो करके और साक्षात् दिव्य रूपमें आकाशमें प्रकट होनेवाले भगवान्‌का कैसा अलौकिक स्वरूप है ! अहा, आनन्द, आनन्द, आनन्द, पूर्णानन्द, पूर्णानन्द, पूर्णानन्द !

नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥

भगवान् श्रीकृष्ण आकाशमें विराजमान हो रहे हैं, भगवान्‌का स्वरूप करीब चार-साढ़े-चार फुट लंबा और उनकी आयु लगभग बारह वर्षकी है। भगवान् आकाशमें बहुत ही सुन्दर रूपसे चमक रहे हैं। उनके चरण बड़े सुन्दर हैं, चरणोंके तलवोंमें गुलाबी रंगकी झलक और ऊर्ध्वरेखाएँ हैं। अङ्गुलियोंके नीचे चक्र और शंखकी भाँति रेखाएँ हैं और तलवोंके बीच ध्वजा, अंकुश तथा वज्रके चिह्न हैं। भगवान् अब और निकट पहुँच गये। अतः उनके चरणोंका ऊपरी भाग भी दीखने लगा। वे बहुत ही कोमल हैं, उनके छूनेसे शरीरमें रोमाञ्च हो जाता है और आनन्दकी लहरें उठने लग जाती हैं। जिस प्रकार सागरमें जलकी लहरें उठती हैं, उसी प्रकारसे शरीरमें आनन्दकी लहरें लहराती हैं। भगवान्‌के चरण तथा उनकी अङ्गुलियाँ भी अलौकिक सुन्दर हैं। नाखूनोंमें अलग चमक है। भगवान् नूपुर पहने हुए हैं, दोनों पिंडलियाँ, दोनों पैर और जंघाएँ परम सुन्दर हैं। पीताम्बर पहने हुए हैं, जिससे भगवान्‌का स्वरूप सुशोभित हो रहा है। पीताम्बर झीना है, जिससे भगवान्‌का स्वरूप उसमें झलकता, चमकता हुआ बिलकुल प्रत्यक्षकी तरह दीखता है। भगवान् केसरिया रंगका जामा पहने हुए हैं, वह भी बहुत ही झीना है। उसमेंसे भी भगवान्‌का स्वरूप भीतरसे चमकता है। गलेमें बड़ी सुन्दर वनमाला पहने हुए हैं। ... तुलसीके

पत्तोंके गुच्छे भी गुँथे हुए हैं। गलेमें मोतियोंकी भी माला है, उसमें घुमची (गुंजा) पिरोयी हुई है। भगवान् गलेमें रत्नोंका कण्ठा और रत्नजटित हार भी पहने हुए हैं। भगवान्‌की दोनों भुजाएँ घुटनोंतक लंबी हैं। भगवान् वंशी बजा रहे हैं। बायें हाथमें वंशी धारण किये हुए हैं और दायें हाथसे सुर चला रहे हैं। वंशीका अग्रभाग भगवान्‌के अधरोष्ठपर है, मानो वंशी भगवान्‌का अधरामृत (याने ओठसे चूनेवाला अमृत) पान कर रही है। भगवान् गुलनार रंगका एक दुपट्टा भी धारण किये हैं। भगवान्‌के दोनों हाथ लंबे, चमकीले और चिकने हैं। हाथोंमें अँगूठी पहने हुए हैं और बाँहोंमें अनन्त (एक आभूषण) बाँधे हुए हैं। भगवान्‌के कंधे पुष्ट और बहुत ही सुन्दर हैं, छाती चौड़ी, गला लंबा है। उनके ओष्ठ लाल विम्बाफलकी भाँति या लाल मणिकी तरह चमकते हैं। वे जब बोलते हैं तो उनकी वाणी अमृतके समान प्यारी लगती है, मानो उसके अंदर प्रेम भरा हुआ है। ओठ जब खोलते हैं, उससे मनुष्य मुग्ध हो जाता है और दाँतोंकी पंक्तियाँ मानो मोतियोंकी पंक्ति हों। भगवान्‌की वाणी सुन्दर, अर्थयुक्त और प्रेमभरी है। बहुत ही मधुर और कानोंके लिये अमृतके समान प्यारी लगती है। भगवान्‌में अलौकिक सुगन्ध आती है जो बहुत ही मधुर और नासिकाके लिये अमृतके समान प्रिय है। भगवान्‌के दोनों कान बहुत ही सुन्दर हैं और कानोंमें रत्नजटित कुण्डल पहने हुए हैं। उनकी आकृति मकरके समान है और नासिका बहुत ही सुन्दर है। दोनों कपोल पीले रंगकी आभासे युक्त एकदम चमक रहे हैं। भगवान् एकदम श्याम हैं, किंतु गालोंपर गुलाबी रंगकी झलक है। कानोंके कुण्डलकी आभा गालोंपर पड़नेसे विशेष शोभा बढ़ जाती है। भगवान्‌के दोनों नेत्र खुले हुए हैं और चपल हैं। वे नीले रंगके दो खिले हुए कमलके सदृश हैं। भगवान्‌के नेत्रोंकी आकृति कमलकी पंखुड़ियोंके समान है और उनके नेत्रोंका खिलना कमलके पुष्पके समान। भगवान्‌का मुख भी गुलाबके पुष्प-सा खिला हुआ है। भगवान् हँसते हैं तो मानो प्रेमकी वर्षा कर रहे हैं। अब भगवान् आकाशमें फिर ऊपरको उठ जाते हैं। आकाशमें जा करके नेत्रोंके द्वारा हमलोगोंपर प्रेमकी वर्षा कर रहे हैं। हम सब प्रेममें मुग्ध हो रहे हैं। प्रेम ही आनन्दके [illegible] कहें। उसमें ऐसा एक अलौकिक रस है इसलिये उसको हम रस भी कह सकते हैं।

भगवान् सबको सम-भावसे देखते हैं, इसलिये प्रभुका नाम समदर्शी है। मानो समताकी वर्षा करते हैं और हमलोग सम-भावमें मग्न हो गये हैं। हमलोगोंकी विषमता चली गयी है। और वहाँ राग-द्वेष आदि मायाका कोई भी कटक नहीं आ सकता। भगवान् जहाँ विराजमान रहते हैं, वहाँसे माया कोसों दूर रहती है। भगवान् अपने नेत्रोंसे मानो शान्तिकी वृष्टि कर रहे हैं। भगवान् साक्षात् क्षमा-रूप हैं, भगवान्‌में अनन्त गुण हैं और उन गुणोंको नेत्रोंके द्वारा वे संसारमें फैला रहे हैं, विकीर्ण कर रहे हैं। सारा संसार यानी समस्त ब्रह्माण्ड उन गुणोंसे परिपूर्ण हो रहा है। नेत्रोंके द्वारा विकसित होकर मानो उनके हृदयके उत्तम भावोंकी वर्षा हो रही है। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो गुणोंकी बाढ़ आ गयी हो। उनके भावोंका मानो सागर उमड़ गया हो और उस सागरमें हमलोग मग्न हो रहे हैं। उनके क्षमा, दया, शान्ति, समता, संतोष, सरलता आदि अनेक गुण हैं। भगवान् स्वयं बोधस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप हैं। ये आनन्दघन परमात्मा भावके रूपमें, गुणोंके रूपमें, हमलोगोंमें उत्तमभावके रूपमें परिपूर्ण हो रहे हैं। उनके नेत्र खिले हुए कमलके सदृश और चपल हैं, उनके नेत्रोंके मध्यमें लाल रंगके डोरे हैं जैसे कमलके फूलकी पंखुड़ियोंमें हुआ करते हैं। भौंहें भौंरोंके समान हैं और भृकुटी बहुत ही सुन्दर है तथा ललाट चमक रहा है और उसपर श्रीधारी तिलक है। शीशपर काले रंगके केश भौंरोंके समान हैं और मस्तकपर बहुत ही चमकीले मोरमुकुट बाँधे हुए हैं, उसके बीचमें सोनेके ताँतमें घुंघची और मोती गुँथे हुए हैं। मुकुट बहुत ही सुन्दर चमक रहा है। इस प्रकार भगवान् आकाशमें खड़े हैं। भगवान्‌का सारा बदन एकदम श्यामवर्ण है और उसमें अलौकिक चमक है। जैसे पूर्णिमाका चन्द्रमा आकाशमें स्थित होकर सारे ब्रह्माण्डमें अपनी चाँदनी फैलाता है, ऐसे ही भगवान् आकाशमें स्थित होकर अपना प्रकाश चारों ओर फैला रहे हैं। भगवान्‌का सारा स्वरूप अलौकिक और अद्भुत है। भगवान् आकाशमें स्थित होकर हँस रहे हैं। हमलोग भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं कि प्रभो ! जैसा चमकीला [illegible] आकाशमें देख रहे हैं, वैसा ही स्वरूप हम साक्षात्

नेत्रोंसे दर्शन करना चाहते हैं। आपका यही स्वरूप सदा हमारे ध्यानमें रहे। आपमें हमारा परम प्रेम हो, आपमें हमारी परम श्रद्धा हो, आपसे हमारा कभी वियोग न हो, हम सदा आपके ही पास रहें और सदा ही आपकी सेवा करते रहें। आपमें हमारा निष्काम और सरल प्रेम हो। हम आपके नामका जप, आपके स्वरूपका ध्यान नित्य-निरन्तर करते रहें।

हमलोग वृन्दावनमें बैठे हैं, इस स्थानका नाम रमणरेती है। भगवान्ने यहाँ रमण किया था, इसलिये इसका नाम रमणरेती है। भगवान्ने यहाँ दिव्य रास किया था और वे गोपियोंके साथ मिल करके नाचा करते थे, गाया-बजाया करते थे। असलमें सबके साथ मिल करके नृत्य किया करते थे। सब मुग्ध हो जाया करते थे। इसके पासमें जमुना नदी बह रही है और यहाँ एक कदम्बका वृक्ष है। उसके ऊपर भगवान् चढ़ जाते हैं। कमलके सदृश नेत्रवाले भगवान् वृक्षकी डालपर बैठे हैं। वह जमीनपर फैली हुई है, उसपर बैठकर भगवान् अपने पैरोंको आहिस्ते-आहिस्ते नीचेकी ओर झुला रहे हैं और वंशी बजा रहे हैं। जिसकी ध्वनि बहुत ही सुन्दर अमृतके समान मधुर है, उसका हमलोग कर्णपुटके द्वारा पान कर रहे हैं। भगवान्का दर्शन नेत्रोंके लिये और वाणी तथा वंशीकी ध्वनि कानोंके लिये, सुगन्ध नासिकाके लिये और उनका स्पर्श हाथों और अन्य अङ्गोंके लिये अमृतके समान है। भगवान्के दर्शन-भाषण-स्पर्श-वार्तालाप सभी अमृतमय, आनन्दमय, रसमय और प्रेममय हैं। भगवान्का दर्शन और स्पर्श बहुत मधुर है, इसीलिये भगवान्के इस रूपको माधुरी मूर्ति कहते हैं।

ध्यान करें, कि एकाएक भगवान् डालसे वंशी बजाते हुए कूद पड़ते हैं और हम सब लोग भी खड़े होकर उनके साथमें नाचते, गाते और बजाते हैं। हमलोगोंके चारों ओर बीचमें मण्डलाकार गोपियाँ भी खड़ी हुई हैं और गाती-बजाती हैं। गोपियोंके बाहर दूसरा मण्डल है गोप-बालकोंका जिनके साथ भगवान् खेला करते हैं। उनका मण्डल भी गोलाकारमें सुशोभित हो रहा है। उसके बाद एक तीसरा मण्डल है जो भगवान्के भक्तोंका है, जिसमें पशु-पक्षी, मनुष्य, सुर-असुर, यक्ष और राक्षस—ये सभी हैं। पशुओंमें हनुमान्, अङ्गद आदि बंदर और पक्षियोंमें गरुड, काकभुशुण्डि, जटायु आदि सभी दिव्य रूप धारण करके भगवान्के नाम-गुणोंका कीर्तन करते हुए मुग्ध हो रहे हैं। देवताओंमें शिव, ब्रह्मा, इन्द्र आदि, यक्षोंमें कुबेर आदि और राक्षसोंमें विभीषण आदि तथा असुर-मण्डलीमें प्रह्लाद और बलि आदि, मनुष्योंमें अम्बरीष, ध्रुव, कीर्तिमान् आदि बहुतसे भक्त मिलकर मण्डलाकार खड़े होकर भगवान्के नाम तथा गुणोंका कीर्तन कर रहे हैं। उसके बाद मण्डलाकारमें खड़ी हुई गौएँ कान ऊँचा करके भगवान्की वंशी-ध्वनि सुन रही हैं। सब एकदम प्रेममें मुग्ध हो रहे हैं और मानो सब कोई मिल करके रास कर रहे हैं, नृत्य कर रहे हैं, उनके दिव्य गुणोंका गान कर रहे हैं। सब प्रेममें मुग्ध होकर नाचते हैं, गाते हैं, बजाते हैं और सब कोई अपने-आपको भूले हुए हैं। ऐसा भगवान्का अलौकिक स्वरूप है और भगवान् सबके मध्यमें गाते-बजाते मुग्ध हो रहे हैं। नेत्रोंसे सभीको देख रहे हैं मानो सबके ऊपर जादू-सा कर रहे हैं, सभी मन्त्रमुग्ध हो रहे हैं। सभी भगवान् श्रीकृष्णको ही देख रहे हैं, मानो हम सब नेत्रोंसे भगवान्को पी जायँगे। सब लोग भगवान्को अपने हृदयमें ले जा रहे हैं। इस प्रकार हम जब हृदयमें देखते हैं तो भगवान्का वही स्वरूप हमारे हृदयमें दीखता है जो स्वरूप बाहर है। जहाँ हमारे नेत्र और मन जाते हैं, वहीं भगवान्का स्वरूप दीखता है, भगवान् हमारे हृदय और नेत्रमें बस गये हैं, बाहर-भीतर सर्वत्र भगवान् परिपूर्ण हो रहे हैं। निराकार-रूपसे तो हो ही रहे हैं, वही भगवान् महान् प्रकाशके रूपमें प्रकट होकर सगुण-साकारके रूपमें—भगवान् श्रीकृष्णके रूपमें दीख रहे हैं। भगवान्का श्यामवर्ण स्वरूप है, बड़ा ही चमकीला और सुन्दर है, जैसे काले रंगकी घटा जलसे भरी हुई हो। इस प्रकारका उनका श्यामवर्ण है कि जैसे कसौटीका पत्थर होता है। पर उसमें चमक कम होती है, इनमें चमक अधिक है, वह तो कोमल भी नहीं है, कठोर है और पत्थर है। भगवान्के साथ किसीकी तुलना नहीं की जा सकती। भगवान् पुष्प तथा मखमलसे भी कोमल हैं। नवनीतका भी हम उदाहरण नहीं दे सकते, नवनीतमें अँगुली बैठ जाती है और वह बहुत गीला भी होता है। भगवान् कोमल होते हुए भी बहुत ही अलौकिक हैं। स्पर्श करते समय, मिलनेके समय, ऐसा भाव उत्पन्न होता है कि उनमें प्रवेश कर जायँ, उनको अपने [illegible] पी जायँ।

भगवान्‌का दर्शन-भाषण-स्पर्श—सभी अलौकिक, अमृतमय और आनन्दमय है, ऐसे भगवान्‌के स्वरूपको देखते हुए तथा उसमें मुग्ध होते हुए, चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते और सोते समय मानो भगवान् हमारे साथ रहते हैं, हर समय इस प्रकारका भाव रखना चाहिये। गोपियाँ अपने काम करनेके समय भी भगवान्‌के नाम और गुणोंका कीर्तन किया करती थीं अर्थात् निरन्तर ही भगवान्‌के नाम और गुणोंका कीर्तन करती थीं। और उनका मन भगवान्‌में बसता था तथा भगवान् उनके हृदयमें और नेत्रोंमें बसते थे। गाय दुहते समय, दही बिलोते समय, रसोई बनाते समय, घरमें झाड़ू देते समय, बच्चोंको नहलाते समय, घर लीपते समय अर्थात् प्रत्येक कार्य करते समय भगवान्‌के नाम और गुणोंका गायन करती हुई और भगवान्‌का मनसे ध्यान करती हुई गोपियाँ अपने कार्य किया करती थीं। इसी प्रकार हमलोगोंको भी प्रत्येक कार्य करते समय निरन्तर भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये। सोनेके समयमें भगवान्‌के नाम और गुणोंका ध्यान करना चाहिये और जिस प्रकारसे महान् रास होता है, उसमें सभी लोग प्रेमसे नाचते-गाते-बजाते हैं, उसी प्रकारसे हमलोग इस समय महान् रासमें सम्मिलित हो करके भगवान्‌के नाम-गुणोंका गान करते हुए परिक्रमा कर रहे हैं। भगवान्‌के बहुत-से नाम हैं, भगवान्‌के अनन्त नाम हैं—श्रीकृष्ण, वासुदेव, नारायण, मधुसूदन आदि। हमारा मन भगवान्‌में और उनके नेत्र हमारे सम्मुख हैं, वे हमलोगोंको एक साथ सम-भावसे देखते हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि मानो भगवान् हमारे ही सम्मुख हो रहे हैं। भगवान् नाचते हैं, गाते हैं, बजाते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् आकाशके बीच चले जाते हैं और फिर उस कदम्बके वृक्षपर बैठकर अपने पैरोंको हिलाते हुए नेत्रोंसे बारंबार दृष्टि डालते हुए प्रेमसे वंशी बजा रहे हैं। फिर थोड़ी देर बाद उस डालपरसे उछलकर बीचमें कूद पड़ते हैं तो सब नाचते हैं, गाते हैं, बजाते हैं और प्रेममें मुग्ध हो जाते हैं। फिर भगवान् खड़े हो जाते हैं, उस समय उनका एक पैर तो खड़ा है और दूसरे पैरकी एड़ी उठी हुई है, मात्र पंजा जमीनपर है ऐसी बाँकी झाँकीसे खड़े हो जाते हैं। पैर टेढ़े, कमर टेढ़ी और खड़े भी टेढ़े हैं तथा हाथ भी टेढ़े, वंशी भी टेढ़ी, गला भी टेढ़ा, मुकुट भी टेढ़ा और नेत्र भी टेढ़े अर्थात् सब प्रकारसे टेढ़े खड़े हुए हैं। ऐसी झाँकी जो सब जगहसे टेढ़े (बाँके) होनेसे बाँकेविहारी कहाते हैं। कभी आकाशमें स्थित होकर एक प्रकारसे सबके ऊपर अपना प्रभाव डालते हैं। कभी आकाशमें चले जाते हैं, कभी उछल करके कदमकी डालपर बैठ जाते हैं, कभी कूद पड़ते हैं, कभी नाचते हैं, कभी गाते हैं, कभी बजाते हैं,—इस प्रकारसे भगवान् लीला कर रहे हैं। ऐसे लीलामय स्वरूपको निरन्तर अपने ध्यानमें रखते हुए विचरण करना चाहिये, जैसे गोपियाँ विचरण किया करती थीं।

आत्मप्रबोध

(श्रीराधाकृष्णजी श्रोत्रिय, 'साँवरा')

मुझसे मैं निर्मित नहीं, निर्माता कोइ और।
फिर भी चिन्ता कर रहा, मैं मूरख-सिरमौर॥
हम सब हरिकी बाँसुरी, हैं हरिके आधीन।
जैसे जिसे बजा रहे, वह उस स्वरमें लीन॥
मानव अपने प्रति स्वयं, उत्तरदायी आप।
निर्णायक निज कर्मका, पुण्य करे या पाप॥
पाप कभी धोये नहीं, केवल धोया गात।
अपराधोंकी शृंखला, बढ़ा रहे दिन-रात॥
पाप सदा तो हम करें, धोयें नित भगवान।
कबतक यह सब चलेगा, कभी दिया नहिं ध्यान॥

इस संसारी सर्पने डसा, सभीको आज।
अहंकार ईर्षा करे, मानव-मनपर राज॥
जो हुआ अच्छा हुआ, जो होता वह ठीक।
होगा जो अच्छा समझ, यह विचार अति नीक॥
जीवन-रथके सारथी, हों जिसके श्रीकृष्ण।
भव-बाधाओंके स्वतः, हल हो जायें प्रश्न॥
मानव-मन मन्दिर बना, शीश-शिखर आसीन।
प्रभु-निर्मित तन-भवनमें, रह पूजामें लीन॥
वन्दनीय दुर्लभ दरस, तिनको कोटि प्रणाम।
जिनको निज [illegible] राम॥

सृष्टि

(तत्त्वदर्शी महात्मा श्रीतैलंग स्वामीजीका उपदेश)

विश्वपतिकी विश्व-सृष्टिका अपार कौशल साधारणतः मानव-बुद्धिके परे होनेपर भी उसके नियम इतने सरल हैं कि जिनके हृदयंगम होनेसे मन भक्ति-रसमें लीन हो जाता है। जीव-सृष्टिके प्रारम्भमें इस जगत्में केवल पञ्चभूत और परमात्माका अस्तित्व ही विद्यमान था। वही पञ्चभूत जीव-सृष्टिके उपादानमें लिया गया है।

उस नित्य चैतन्य-स्वरूप परमात्मासे प्रथम आकाश समुद्भूत हुआ। इसके अनन्तर आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वी उत्पन्न हुई है[1]। तदनन्तर आकाश आदिद्वारा गुणक्रमके तारतम्यकी विशेषतासे सत्त्व, रज और तम गुण उत्पन्न हुए हैं। उसी अवस्थापन्न आकाशादिको सूक्ष्मभूत और पञ्चतन्मात्र कहा जाता है। इन सब सूक्ष्मभूत पदार्थोंसे सूक्ष्मशरीर और स्थूलभूत-समूह उत्पन्न हुआ है[2]। सप्तदश अवयव-विशिष्ट जो शरीर है, उसको सूक्ष्म शरीर कहते हैं। सप्तदश अवयव-विशिष्ट शरीर इस प्रकार है—पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चवायु, पञ्च-कर्मेन्द्रिय, मन और बुद्धि। पञ्चज्ञानेन्द्रिय इस प्रकार हैं—चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वक्। ये सब ज्ञानेन्द्रियाँ पृथक्-पृथक् आकाशादिके सात्त्विक अंशसे उत्पन्न हुई हैं[3], जैसे आकाशके सत्त्वांशसे कर्ण, वायुके सत्त्वांशसे त्वक्, तेजके सत्त्वांशसे चक्षु, जलके सत्त्वांशसे जिह्वा एवं पृथ्वीके सत्त्वांशसे नासिका उत्पन्न हुई है। यही सूक्ष्मशरीर सुख एवं दुःखभोगका कारण है।

बुद्धि निश्चयात्मक अन्तःकरण-वृत्ति है। मन संकल्पात्मक अर्थात् संशयात्मक अन्तःकरण-वृत्ति है। चित्त और अहंकार—ये दोनों ही बुद्धि और मनके अन्तर्गत केवल दो वृत्तियाँ हैं। चित्त अनुसंधानात्मक वृत्ति एवं अहंकार अभिमानात्मक वृत्ति है। बुद्धि और मन आकाशादि पञ्चभूतके सात्त्विक अंशसे उत्पन्न हुए हैं। यही पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ हैं। मन और बुद्धि—इनका प्रकाश-स्वभाव होनेके कारण सात्त्विक अंशके कार्य कहे जाते हैं। पञ्चकर्मेन्द्रियाँ ये हैं—वाक्, पाणि, पाद, पायु एवं उपस्थ। ये पञ्चकर्मेन्द्रियाँ पृथक्-पृथक् आकाशादिके रजोंऽशसे उत्पन्न हुई हैं[4]। जैसे आकाशके रजोंऽशसे वाक्, वायुके रजोंऽशसे पाणि, तेजके रजोंऽशसे पाद, जलके रजोंऽशसे पायु एवं पृथिवीके रजोंऽशसे उपस्थकी उत्पत्ति हुई है।

पञ्चवायु ये हैं—प्राण, अपान, व्यान, उदान एवं समान। ऊपरको गमनशील नासाग्र-स्थायी वायुको प्राणवायु कहते हैं। अधोगमनशील पायु आदि स्थानवर्ती वायुको अपान वायु कहा जाता है। सब नाड़ियोंमें गमनशील समस्त शरीरके स्थायी वायुका नाम व्यान वायु है। ऊर्ध्वगमनशील कण्ठस्थानीय उत्क्रमण-वायुको उदान वायु कहा जाता है। भुक्त-पीत (खाये-पीये हुए) अन्न, जलादिके समीकरणकारी वायुको समान वायु कहते हैं।

१-तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी।
(तैत्तिरीयोपनिषद् २। १। १)

२-सत्त्वरजस्तमांसि कारणगुणप्रक्रमेण तेष्वाकाशादिषूत्पद्यन्ते। इमान्येव सूक्ष्मभूतानि तन्मात्राण्यपञ्चीकृतानि चोच्यन्ते॥ एतेभ्यः सूक्ष्मशरीराणि स्थूलभूतानि चोत्पद्यन्ते। (वेदान्तसारः)

३-सूक्ष्मशरीराणि सप्तदशावयवानि लिङ्गशरीराणि। अवयवास्तु ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं बुद्धिमनसी कर्मेन्द्रियपञ्चकं वायुपञ्चकं चेति। ज्ञानेन्द्रियाणि श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणाख्यानि। एतान्याकाशादीनां सात्त्विकांशेभ्यो व्यस्तेभ्योः पृथक् क्रमेणोत्पद्यन्ते॥ (वेदान्तसारः)

४-बुद्धिर्नाम निश्चयात्मिकान्तःकरणवृत्तिः। मनोनाम संकल्पविकल्पात्मिकान्तःकरणवृत्तिः। अनयोरेव चित्ताहंकारयोरन्तर्भावः। अनुसंधानात्मिकान्तःकरणवृत्तिश्चित्तम्। अभिमानात्मिकान्तःकरणवृत्तिरहंकारः। एते पुनराकाशादिगतसात्त्विकांशेभ्यो मिलितेभ्य उत्पद्यन्ते। एतेषां प्रकाशात्मकत्वात् सात्त्विकांशकार्यत्वम्।

सांख्यशास्त्रमतावलम्बी लोगोंका कहना है कि नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय नामक और भी पाँच वायु हैं। इनमें नाग उद्गिरणकारी वायु, कूर्म चक्षु-उन्मीलनकारी वायु, कृकल क्षुधाजनक वायु, देवदत्त जम्हाई आदि लानेवाला वायु और धनंजय पुष्टिकारक वायु है। किंतु वेदान्तियोंके मतसे प्राणादि पञ्चवायुके अन्तर्भावमें नागादि पञ्चवायु भी आ जाते हैं। इसलिये उनकी प्राणादि पञ्चवायु संज्ञा ही है। इस प्राणादि पञ्चवायुकी उत्पत्ति आकाशादि पञ्चभूतोंके मिलित रजोंऽशसे है[1]। गमनागमन-क्रिया-स्वभाववश प्राणादि पञ्चवायुको रजोंऽशका कार्य कहा जाता है।

शरीर तीन प्रकारके हैं—स्थूलशरीर, सूक्ष्मशरीर और कारणशरीर। इनमें पाँच कोष हैं—अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष।

(१) स्थूलशरीर—यह अन्न-रससे उत्पन्न होता है तथा अन्न-रससे बढ़ता है और विनष्ट होकर अन्नरूप पृथिवीमें लय हो जाता है। इसलिये उसको अन्नमय कोष कहते हैं।

(२) पञ्चकर्मेन्द्रियोंके साथ मिलित प्राणादि पञ्चवायुको प्राणमय कोष कहा जाता है।

(३) पञ्चकर्मेन्द्रियोंके साथ मिलित मनको मनोमय कोष कहा जाता है।

(४) ज्ञानेन्द्रियोंके साथ मिलित बुद्धिको विज्ञानमय कोष कहते हैं। वही विज्ञानमय कोष कर्तृत्व, भोक्तृत्व एवं सुख-दुःखाभिमानी है, वह लोक-परलोकगामी जीव-नामसे बताया गया है।

(५) कारणशरीरसे सुषुप्ति-कालमें आत्मा प्रचुर आनन्दका उपभोग करता है। इसी निमित्त, इस कारणशरीरको आनन्दमय कोष कहा जाता है। अविद्या ही कारणशरीर है।

जीवके कर्मद्वारा संचित और पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतद्वारा निर्मित यह स्थूलशरीर सुख-दुःख-भोगका स्थान बना हुआ है। अनिर्वचनीय और अनादि जो अविद्या है, जो समस्त प्रपञ्चका कारण है, उसको कारणशरीर कहा जाता है। जो कारणशरीर, सूक्ष्मशरीर और स्थूलशरीरसे भिन्न है, वही आत्मा है। जिस प्रकार स्फटिक अति निर्मल होनेपर भी नीले वस्त्रके संयोगसे नीले रंगका मालूम देता है, उसी प्रकार आत्मा अति निर्मल होते हुए भी अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय—इन पञ्चकोषोंके योगसे तत्तत् कोषमय जान पड़ता है।

इन पञ्चकोषोंमें ज्ञान-शक्तिविशिष्ट विज्ञानमय कोष कर्ता, इच्छा-शक्ति-विशिष्ट मनोमय कोष करण और क्रियाशक्ति-विशिष्ट प्राणमय कोष कार्य हैं। इसी सम्मिलित अथवा एकत्र कोषत्रयको सूक्ष्मशरीर कहा जाता है। जैसे वनमें वृक्षोंका अभेद है, वहाँ वनावच्छिन्न समष्टि आकाशमें और वृक्षावच्छिन्न व्यष्टि आकाशमें भेद नहीं है। जलाशयमें जलका भेद नहीं, जलगत प्रतिबिम्बित आकाशके साथ जलाशयगत प्रतिबिम्बित आकाशका भेद नहीं है[2]।

पञ्चीकरण—प्रत्येक पञ्चभूतको समान दो भागोंमें विभक्त करो। पश्चात् इन दस भागोंमेंसे प्रत्येक पञ्चभूतके प्रत्येक पाँच भागको समान चार अंशोंमें बाँटकर उन प्रत्येक चार अंशोंको अपने द्वितीय अर्धभागके साथ मिला दो[3]।

इस पञ्चीकरण-कालमें आकाशसे 'शब्द' गुण उत्पन्न होता है। वायुसे शब्द और स्पर्श; अग्निसे शब्द, स्पर्श, रूप; जलसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस; पृथिवीसे शब्द, स्पर्श, रूप,

---

१- वायवः प्राणापानव्यानोदानसमानाः। प्राणो नाम 'प्राग्गमनवान् नासाग्रस्थानवर्ती। अपानो नाम वायुरागमनवान् पाय्वादिस्थानवर्ती। व्यानो नाम विष्वग्गमनवानखिलशरीरवर्ती। उदानः कण्ठस्थानीयः ऊर्ध्वगमनवानुत्क्रमणवायुः। समानः शरीरमध्यगताशितपीतान्नादि समीकरणकरः।

केचित्तु नागकूर्मकृकलदेवदत्तधनंजयाख्याः पञ्चान्ये वायवः सन्तीत्याहुः। तत्र नाग उद्गिरणकरः। कूर्मः निमीलनादिकरः। कृकलः क्षुत्करः। देवदत्तो जृम्भणकरः। धनञ्जयः पोषणकरः। एतेषां प्राणादिष्वन्तर्भावात् प्राणादयः पञ्चैवेति केचित्। इदं प्राणादिपञ्चकमाकाशादिगतरजोंऽशेभ्यो मिलितेभ्य उत्पद्यन्ते।' (वेदान्तसारः)

२- एतेषु कोषेषु मध्ये विज्ञानमयो ज्ञानशक्तिमान् कर्तृरूपः। मनोमय इच्छाशक्तिमान् करणरूपः। प्राणमयः क्रियाशक्तिमान् कार्यरूपः। एतत्कोषत्रयं मिलितं सत् सूक्ष्मशरीरमित्युच्यते। (वेदान्तसारः)

'अखिलसूक्ष्मशरीरमेकबुद्धिविषयतया वनवज्जलाशयवद्वा समष्टिरनेकबुद्धिविषयतया वृक्षवज्जलवद्वा व्यष्टिश्च भवति।' (वेदान्तसारः)

३- 'द्विधा [illegible] पञ्च पञ्च ते॥ (पञ्चदशी १। २३)

रस और गन्धकी उत्पत्ति है[1]।

स्थूलशरीर चार प्रकारका है—जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज। मनुष्य और पशु-प्रभृतिकी उत्पत्ति जरायुसे है, पक्षी और सर्पादिकी अण्डसे एवं मच्छर और यूका (जूँ) आदिकी उत्पत्ति क्लेदसे। भूमिसे वृक्ष-लता आदि सभी तरहके उद्भिज्ज उत्पन्न होते हैं[2]।

जरायुज देहके तीन प्रकार हैं—पुरुष, स्त्री और नपुंसक। शुक्रका भाग अधिक रहनेसे पुरुष और शोणितका भाग अधिक रहनेसे स्त्री और शुक्र तथा शोणित दोनोंका भाग समान रहनेसे नपुंसक होता है। ऋतुकालमें पुरुषका स्त्रीके साथ संयोग होनेपर जीव शुक्रके साथ मातृगर्भमें प्रविष्ट होता है। युग्म दिवस-संसर्ग होनेपर जो संतान उत्पन्न होती है, वह पुरुष और अयुग्म दिवसके सहवाससे स्त्री। ऋतुस्नाता स्त्री जिसका प्रथम मुख देखेगी उस ऋतुकालसे उत्पन्न संतानका आकार उसीके समान होगा। अतएव ऋतुस्नान करते ही पहले पतिका मुखावलोकन करना कर्तव्य है। गर्भ अपनी स्थितिके पाँचवें दिन बुद्बुदाकार होकर सातवें दिन मांसपेशीके रूपमें परिणत हो जाता है। अनन्तर वही मांसपेशी एक पक्षमें शोणिताप्लुत होती है। पचीसवें दिन गर्भ अङ्कुराकार होता है। पहले महीनेमें क्रमानुसार स्कन्ध, ग्रीवा, मस्तक, पृष्ठ और उदर—ये पाँच अङ्ग उत्पन्न होते हैं। दूसरे महीनेमें हस्त-पादादि। तीसरे महीनेमें अन्यान्य अङ्ग-सन्धि होकर चौथे महीनेमें शरीरमें रक्तसंचार होता है। पाँचवें महीनेमें चक्षु, कर्ण, नासिका, नख और गुदा उत्पन्न होते हैं। छठे महीनेमें गुदा-छिद्र, स्त्री एवं पुरुषके चिह्न, कर्ण-छिद्र तथा नाभि उत्पन्न होते हैं। सातवें महीनेमें केश-रोमादि निकलते हैं। आठवें महीनेमें जीव गर्भमें अच्छी तरह अवयव-सम्पन्न हो जाता है। केवल दाँत और दाढ़ी-मूँछको छोड़कर अन्य सब अवयव गर्भमें ही उत्पन्न हो जाते हैं। नवें महीनेमें पूर्णरूपसे चैतन्य (चेतनता)-लाभ होता है। उस समय जीव अपनी माताके भोजनके अनुसार गर्भमें ही बढ़ता रहता है। तदनन्तर गर्भसे बाहर आकर मांस-पिण्डकी तरह कोई कार्य नहीं कर सकता।

जितने दिन सुषुम्ना नाडी श्लेष्मासे ढकी हुई रहती है, उतने दिनतक बोल नहीं सकता और चल भी नहीं सकता। काल-क्रमसे बालककी अवस्था बदल जाती है और धीरे-धीरे वह मायासे मुग्ध होकर गर्भकी यन्त्रणाको भूल जाता है।

बाल्यावस्था बहुत ही कष्टदायक है। बोलकर मनका भाव भी प्रकट नहीं किया जा सकता। वह इच्छाके अनुसार कुछ भी नहीं कर पाता। समय-समयपर विष्ठामें भी लिपटकर पड़ा रहना पड़ता है। कोई सुख नहीं मिलता। शैशवकाल इससे भी बढ़कर दुःखदायक होता है। सब प्रकारसे पराधीन—लिखना-पढ़ना सीखनेके समय तरह-तरहसे परिश्रम करना पड़ता है। सबकी धमकी सहनी और मार खानी पड़ती है। किसीके वशमें होकर रहनेकी इच्छा नहीं होती, परंतु यह समय सबके वशीभूत रखना चाहता है। कभी कहींसे गिर पड़नेके कारण चोट सहन करनी पड़ती है तो कभी छुरी-चाकूसे हाथ-पाँव कट जानेका कष्ट भोगना पड़ता है। नयी-नयी बदमाशियाँ करनेकी सूझती हैं और इसके लिये पीड़ा भी सहन करनी पड़ती है।

यौवनकाल इसकी अपेक्षा और भी दुःखदायक है। अधःपतनकी ओर जानेका यही समय है। केवल देहकी चमक-दमकका ही ख्याल रहता है। जितने बुरे काम लोग कर बैठते हैं उनका यही समय है। तरह-तरहके नशे, वेश्यावृत्ति, लोभ, चोरी, विषयासक्ति, मारकाट, झगड़ा, मामला-मुकदमा—जितने बुरे काम हैं, वे सब इसी समयमें किये जाते हैं। समुद्रसे तैरकर पार होना सम्भव कहा जा सकता है, किंतु यौवनको शान्तिसे व्यतीत करना किसी तरह भी सम्भव नहीं है। अधिकांश मनुष्य ही ऐसे यत्नद्वारा पाले हुए शरीरको नाना प्रकारके अत्याचारद्वारा मिट्टी कर डालते हैं। जो इस यौवनावस्थाको अच्छी तरह संयत-भावसे व्यतीत कर सके, वही सत्पुरुष है। लोग यौवनमें पदार्पण करते ही स्त्रीमें आसक्त होना प्रधान कार्य समझने लगते हैं। जितने दिन स्त्री-संसर्ग

१-तदानीमाकाशे शब्दोऽभिव्यज्यते, वायौ शब्दस्पर्शाविग्नौ शब्दस्पर्शरूपाण्यप्सु शब्दस्पर्शरूपरसाः पृथिव्यां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाश्च। (वेदान्तसारः)

२-चतुर्विधस्थूलशरीराणि जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जाख्यानि। जरायुजानि जरायुभ्यो जातानि मनुष्यपश्वादीनि। अण्डजानि अण्डेभ्यो जातानि पक्षिपन्नगादीनि। स्वेदजानि स्वेदेभ्यो जातानि मशकयूकादीनि। उद्भिज्जानि भूमिमुद्भिद्य जातानि लतावृक्षादीनि। (वेदान्तसारः)

न हो, उतने दिनोंतक उनके लिये संसार असार है। वे तरह-तरहसे वृक्ष-वैराग्य धारण कर उदासीन बन अपने जीवनको सुखसे शून्य मान बैठते हैं।

किंतु थोड़ी विवेचना करके देखो तो सही कि स्त्रीमें है क्या? पञ्चभूतात्मक एक आकारके सिवा कुछ भी नहीं है। स्तनयुगल दो मांसपिण्ड एवं देह केवल विष्ठा और मूत्रसे पूर्ण एक चमड़ेकी थैली मात्र है। संसर्ग करना नरकभोगसे भिन्न कुछ भी नहीं है। मनुष्य मत्स्य है, चित्त उसका जल है, वासना रस्सी और चिन्तन उसका काँटा है, जिसके द्वारा मच्छी पकड़ी जाती है। तरुणीके प्रति आसक्त युवक विन्ध्यपर्वतके गह्वरमें हस्तिनीलोलुप हस्तीकी भाँति आबद्ध होकर अतीव शोचनीय दशाको प्राप्त हो जाता है। जिसके वासना है, उसीके भोग और कामना है। वासनाका त्याग करनेसे ही जगत्‌का परित्याग होता है। जगत्‌का परित्याग ही महासुखी होनेका उपाय है।

यौवन पूर्ण होते-न-होते जरा आकर यौवनका ग्रास करते हुए वार्धक्य-अवस्था ला देती है। जराका आक्रमण होते ही लोभ बढ़ता है और श्रीहीन, तेजोहीन एवं शक्तिहीन होकर मनुष्य चिन्तामें लीन हो जाता है। उस समय आत्मीय घृणा करने लगते हैं। वृद्धावस्था बढ़नेके साथ उत्तम भोजन करनेकी इच्छा बलवती होती है, किंतु इच्छा होनेपर भी खाया नहीं जाता। उस समय तरह-तरहकी चिन्ताएँ आकर घेर लेती हैं। पहले जो-जो अन्याय-कार्य बन चुके, एक-एक करके उनका विचार मनमें उठता है और मैंने क्या किया, क्या होगा, क्या करना चाहिये, पर-कालमें क्या होगा—ये ही बातें सोचकर वह बहुत डरता है और अन्तमें चुपचाप पड़ा रहना ही स्थिर कर लेता है। कारण, इस अवस्थामें निरुत्साह एवं कातरता उपस्थित हो जाती है। बल-शक्तिहीन और आहारमें भी अशक्त होनेके दुःखसे हृदय दग्ध होता रहता है। शरीरमें जरा उपस्थित होनेपर मृत्यु उसके पीछे लगी रहती है। श्वास, कास, मूर्च्छा, वायु, मेद, आमाशय आदि व्याधियोंकी वेदनासे चिल्लाता हुआ मनुष्य रोता रहता है। उसकी छाती आँखोंके पानीसे भीग जाती है।

'जिस देहका इतना यत्न, आदर और इतना प्यार था आज वही देह मृत्यु-मुखमें है। आत्मीय जन, स्त्री-पुत्र, विषय, सम्पत्ति—सभीको छोड़कर कहाँ जाना पड़ेगा।' यही सोचकर मनुष्य रो पड़ता है, व्याकुल हो जाता है। देहको थोड़ेमें ही आनन्द और थोड़ेमें ही दुःख होता है। अतएव यह देह शोचनीय एवं गुणहीन है। देहका सम्बन्ध मुझसे नहीं है और मेरा सम्बन्ध देहसे नहीं है। जो सत्पथ-अवलम्बनपूर्वक ईश्वर-सेवामें रत होकर जीवन-निर्वाह करता है, वह अन्तमें ईश्वरमें लय हो जाता है और जो विषय-वासना एवं भोग-विलासमें डूबा रहता है, उसका यह जन्म विफल चला जाता है। ऐसे संसारमें भी जिनकी असार सुख-भावना है, कराल काल उनका छेदन कर देता है। जगत्‌में उत्पन्न कोई ऐसी वस्तु नहीं कि जो कालका ग्रास बननेसे बच सके।

—(क्रमशः)
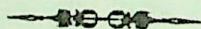
'विचार करनेपर यही सिद्ध होगा कि ब्रह्मचर्यका पालन, विषय-वैराग्य और विषय-त्याग ही उत्तम है, अतः ब्रह्मचर्य और वैराग्य-त्यागको शुभकी श्रेणीमें एवं व्यभिचार तथा विषयासक्ति और विषय-भोगको अशुभकी श्रेणीमें रखे। कोई भी आदमी ब्रह्मचर्य और त्यागके श्रेष्ठत्व तथा महत्त्वको अस्वीकार नहीं कर सकता। भोगी आदमी भी यही कहेगा कि भाई! मैं तो भोगासक्त हूँ, परंतु भोग और त्यागका मुकाबला करनेपर तो त्याग ही श्रेष्ठ सिद्ध होता है। त्यागसे शान्ति मिलती है—'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्' (गीता १२। १२)। विरक्त त्यागी पुरुषोंकी लोक-परलोकमें सर्वत्र प्रतिष्ठा होती है, पर भोगासक्त और विषयभोगीकी प्रतिष्ठा कहीं भी नहीं होती।'

—श्रीजयदयालजी गोयन्दका ('मनुष्य-जीवनकी सफलता' भाग—१-पुस्तकसे)

स्वाधीनता या स्वराज्य

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

स्वाधीनता आत्माका स्वभाव है, इसलिये सभी जीव परतन्त्रतासे घबराते हैं और स्वतन्त्रता चाहते हैं। परतन्त्रताको दुःख और स्वतन्त्रताको ही सुख बतलाया गया है—

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।

परंतु विचार इस बातका करना है कि वास्तविक पराधीनताका स्वरूप क्या है? शास्त्रके नियमोंकी, धर्मकी, राजाकी, माता-पिताकी, गुरुकी, स्वामीकी और सत्यादि सद्गुणोंकी परतन्त्रता यानी इनके वशमें रहकर इनके आज्ञानुसार जीवनयापन करना पराधीनता है या इनसे सर्वथा स्वतन्त्र होकर मन-इन्द्रियोंकी अधीनतामें यथेच्छ आचरण करना पराधीनता है। असलमें 'पर' क्या है, इसपर विचार करना है। अवश्य ही अत्याचारपरायण स्वेच्छाचारी राजा 'पर' है, संतान और शिष्यका अहित चाहनेवाले माता-पिता और गुरु भी 'पर' हैं, स्वार्थी स्वामी भी 'पर' है और अन्यायाचरणमें प्रवृत्त करानेवाला धर्म-नामधारी मत-विशेष भी 'पर' है। इनका विरोध करना और इनकी वशतासे मुक्त होना आवश्यक भी है और ऐसा होता भी आया है। 'वेन' और 'कंस'-सरीखे राजाओंका विरोध और उनका विनाश धर्मसंगत माना गया। हिरण्यकशिपु-से पिता और कैकेयी-सी माता तथा शुक्राचार्य-से गुरुकी बात भी नहीं मानी गयी। अधर्मपरायण भगवद्विमुख स्वामियोंका भी त्याग किया गया और अधर्ममूलक मतोंका भी बहिष्कार करना पड़ा तथा ऐसा करना उचित भी था। इसीसे तुलसीदासजीने गाया—

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी॥
नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं।
अजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित, पूज्य प्रानते प्यारो।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो॥

यह सब सत्य होनेपर भी असलमें ये ही 'पर' नहीं हैं। 'पर' तो हैं हमारे अन्तःकरणकी मलिन वासनाएँ, भोग-कामनाएँ और विविध प्रकारके काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, वैर, हिंसा, दम्भ, द्रोह, अभिमान, स्वार्थ, अधिकारलोलुपता, आसक्ति और ममता आदि मानसिक दोष। इन दोषोंकी उत्पत्ति अज्ञानसे है और अज्ञानका कारण है 'प्रकृति-परवशता।'

श्रीभगवान्‌ने गीतामें कहा है—

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥
(१३।२१)

'प्रकृतिमें स्थित पुरुष ही प्रकृतिसे उत्पन्न तीनों गुणोंको भोगता है और इन गुणोंका संग ही इस जीवके अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म होनेका कारण है।'

यह ऐसी परवशता है, जिसके कारण बिना इच्छा भी भाँति-भाँतिकी योनियोंमें भटकना और प्रारब्धानुसार सुख-दुःखोंका भोग बाध्य होकर करना पड़ता है। मनुष्य जबतक इस प्रकृतिके दासत्वसे नहीं छूट जाता, तबतक उसकी आत्माको स्व-राज्य नहीं मिल सकता, वह सच्ची स्वाधीनता नहीं प्राप्त कर सकता। हमारा मन, शरीर और इन्द्रियाँ—ये सभी, यदि हमारे वशमें नहीं हैं तो हमारे 'स्व' के प्रतिद्वन्द्वी हैं—विरोधी हैं। आजकल तो यह कहा जाता है कि 'हम किसीके भी अधीन नहीं रहेंगे, किसी भी नियमके बन्धनमें नहीं रहेंगे, केवल अपनी अबाध-असंयत प्रवृत्तियोंके अधीन रहेंगे, अपने मन-इन्द्रियोंकी इच्छाका अनुसरण करेंगे।' यही पराधीनता है और ऐसा माननेवाले ही वस्तुतः पूरे पराधीन हैं। मनुष्य सामाजिक प्राणी है और समाजबद्ध होकर रहनेमें सभीको कुछ-न-कुछ परतन्त्रता स्वीकार करनी पड़ती है। परंतु मनुष्यके यथेच्छाचारी हो जानेपर समाजकी यह शृङ्खला टूट जाती है और फलतः दुःख-ही-दुःख आ जाते हैं। स्वाधीनताके इस विकृत स्वरूप यथेच्छाचारका ही यह फल है कि आज कहीं भी व्यवस्था या अनुशासनका सम्मान नहीं है। पिता-पुत्रमें, मा-बेटीमें, गुरु-शिष्यमें, राजा-प्रजामें, मालिक-नौकरमें, पति-पत्नीमें, सास-पतोहूमें और भाई-भाईमें [illegible] और [illegible] पैदा हो गया है।

इसीसे आज राष्ट्रगत, समाजगत, परिवारगत और व्यक्तिगत सब प्रकारकी सुख-शान्ति नष्ट होती जा रही है।

भगवान्ने गीता (१६ । २३) में कहा है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

'जो मनुष्य शास्त्रकी विधिको छोड़कर मनमाना आचरण करता है, वह न तो सिद्धिको प्राप्त होता है, न सुखको ही और न (मरनेके बाद) परम गतिको ही।'

शास्त्रके किसी भी नियन्त्रणको न माननेवाले मनुष्यकी मन-इन्द्रियाँ सर्वथा अनियन्त्रित और निरङ्कुश हो जाती हैं। उसका चित्त असंयत कामना-वासनाकी क्रीड़ास्थली बन जाता है और उनके वशमें होकर वह नाना प्रकारसे लोभ-मोह, वर-विरोध, दम्भ-दर्प और द्वेष-हिंसाकी क्रियाएँ करता है। इससे उसको जीवनमें कभी भी निर्बाध और सत्य सिद्धि नहीं मिलती। वह प्राणपणसे चेष्टा करके जिस सिद्धिको प्राप्त करता है, वही असिद्धिके रूपमें परिणत हो जाती है, क्योंकि उसकी प्रत्येक क्रिया ही होती है कामना-लोभ और क्रोध-वैरको लेकर। ऐसे काम-क्रोधपरायण पुरुषके बाहरी शत्रुओंका कभी अभाव नहीं होता। वह किसी भी स्थितिको क्यों न प्राप्त कर ले, वहीं उसके प्रतिद्वन्द्वी, उसके वैरी, उसके मार्गमें विघ्न पैदा करनेवाले तैयार रहते हैं और साथ ही उसकी दुर्दमनीय लोभ-वृत्ति उसे किसी भी स्थितिमें संतुष्ट नहीं होने देती। फलतः वह निरन्तर मानसिक शत्रुओंके परवश होकर ऐसी क्रियाएँ करता रहता है, जिससे बाहरके शत्रु सदा ही बढ़ते रहते हैं। इससे उसको जीवनमें कभी सुख नहीं होता और जीवनभर उद्दाम कामनाके वशमें होकर न्यायान्याय—धर्माधर्म-विचारसे रहित यथेच्छाचरण करनेवालेको परम गति तो मिल ही कैसे सकती है? इसीसे भगवान् कहते हैं—

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः॥
तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(गीता १६ । १८—२०)

'अहंकार, बल, घमंड, कामना और क्रोध आदिका आश्रय लिये हुए, दूसरोंके गुणोंमें दोषारोपण करनेवाले और अपने तथा दूसरोंके शरीरोंमें स्थित मुझ (भगवान्) से द्वेष करनेवाले, ऐसे उन द्वेषयुक्त पापकर्मा, निर्दयी नराधमोंको मैं बार-बार आसुरी योनियोंमें गिराता हूँ। अर्जुन! वे मूढ़ मनुष्य जन्म-जन्ममें बार-बार आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं। मुझको न पाकर उस (आसुरी योनि) से भी और अति नीच गति (घोर नरकादि) को प्राप्त होते हैं।'

आज शान्तिप्रिय सुकोमल-मति भारतीय तरुण-वर्गके मनमें स्वाधीनताके जिस उद्दाम-भावका उदय हुआ है, उसका भारतवासियोंको गर्व होना चाहिये। देशके युवकोंमें ऐसी लहरका बह जाना बड़े-से-बड़े त्याग-तपकी और उसके फलस्वरूप महान् सुफलकी पूर्वसूचना मानी जा सकती है, परंतु भयकी बात इतनी ही है कि दूसरोंकी देखा-देखी स्वाधीनताका अर्थ यदि अनुशासनशून्यता, उच्छृङ्खलता, स्वार्थपूर्ण अधिकारप्रियता, मनमाना आचरण या मन-इन्द्रियोंकी दासता हो गया तो उसका फल कभी शुभ नहीं होगा।

सच्ची स्वाधीनता प्राप्त करनेका और उसके फलस्वरूप सब दुःखोंके नाश करनेवाले प्रसादको प्राप्त करनेका उपाय भगवान्ने गीता (२ । ६४-६५) में बतलाया है—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।

'अन्तःकरणको जिसने अपने वशमें कर लिया है, ऐसा पुरुष राग-द्वेषसे रहित अपने वशमें की हुई इन्द्रियोंके द्वारा जब विषयोंका सेवन करता है, तब वह प्रसादको प्राप्त होता है और उस प्रसादके प्राप्त होनेपर उसके समस्त दुःखोंका नाश हो जाता है।'

यही सच्ची स्वाधीनता है। सच्ची बात तो यह है कि हमलोग किसी दूसरेके दास नहीं हैं। शरीर परतन्त्र रहनेपर भी यदि हमारा मन और हमारी इन्द्रियाँ तथा मानसिक वासनाएँ हमारे अधीन हैं तो हम स्वाधीन ही हैं। ऐसी स्थितिमें शारीरिक पराधीनताका नाश करना बहुत सहज है। परंतु मन-इन्द्रियोंकी और कामना-वासनाओंकी गुलामी तो ऐसी चीज है कि इनके

रहते शारीरिक और वैधानिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेनेपर भी मनुष्य कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकता और कभी सच्चे स्वराज्य-सुखका उपभोग नहीं कर सकता। अतएव आत्माकी अपार शक्ति और नित्य विशुद्धिको समझकर बुद्धिके द्वारा मनको वशमें करके मन-इन्द्रियोंमें रहनेवाले इस दुर्जय कामरूप शत्रुको मारना चाहिये—

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥

ऐसा करनेसे ही असली स्वाधीनता प्राप्त होगी। स्वाधीनता केवल शरीरतक ही सीमित न रहे। भगवान्को आश्रय बनाकर हम यदि इस स्वाधीनताको—इस स्वराज्यको आत्माका स्वराज्य बना सकें, मन-इन्द्रियोंकी उद्दाम असंयम प्रवृत्तियोंपर विजय प्राप्त करके उनके दासत्वसे छूट सकें, तभी हमारा वह स्वराज्य परम आदर्श होगा और लोक-परलोक दोनोंमें कल्याणकारक होगा। भारतीय स्वराज्य या रामराज्यका यही स्वरूप है।

महाशक्ति कुण्डलिनीका आरोहण

(महात्मा श्रीभगवत्स्वरूपजी)

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्त्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि॥

(श्रीमदाद्यशंकराचार्यविरचित सौन्दर्यलहरी, ९)

'हे कुण्डलिनीरूपे भगवती! तुम मूलाधारमें पृथिवी-तत्त्व, मणिपूरमें जलतत्त्व (स्वाधिष्ठान), स्वाधिष्ठानमें अग्नि-तत्त्व (मणिपूर), अनाहतमें वायुतत्त्व, विशुद्धिमें आकाशतत्त्व, आज्ञामें मनस्तत्वको पार करके सहस्रारमें अपने पति परमशिवके साथ एकान्तमें विहार करती हो।'

मूलाधारचक्रसे लेकर सहस्रारचक्रतक ही योगीकी पूरी यात्रा है। इस पूरी यात्रामें कई जन्म बीत जाते हैं, परंतु गुरुभक्तिद्वारा गुरु-कृपा प्राप्त हो जानेपर अन्तिम लक्ष्य सहस्रारतक पहुँचनेमें अधिक समय नहीं लगता। इस योगमार्गमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, दम्भ और त्रिविध ताप आदि अनेक प्रकारके विघ्न उत्पन्न होकर साधकको आगे नहीं बढ़ने देते, परंतु गुरुभक्तिसे इन सब बाधाओंको आसानीसे जीता जा सकता है, जैसा कि भागवतकार कहते हैं—

एतत् सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत्॥

(श्रीमद्भागवत ७। १५। २५)

उपर्युक्त सभी बाधाओंको पुरुष गुरुभक्तिके द्वारा सहजमें ही पार कर लेता है। इसीलिये गुरु-भक्त योगी प्रार्थना करता है—

कुल कुंडलिनी घुमभंजक हे।
हृदि-ग्रंथि विदारण कारण हे॥
मम मानस चंचल रात्रि दिने।
गुरुदेव दया कुरु दीन जने॥

वास्तविक बात तो यह है कि योगी आज्ञाचक्रतककी यात्रा तो अपने त्याग, तपस्या और वैराग्यके बलपर कर लेता है; परंतु इसके आगे जो गुरुचक्र सहस्रार है, वहाँतक पहुँचना उसके सामर्थ्यके बाहरकी बात है। आज्ञाचक्रतक मायाका क्षेत्र है, यहाँतक मायाका आकर्षण है। यहाँतक पहुँचा हुआ योगी कभी भी अपनी साधनाके अहंकारके वशमें होकर योगभ्रष्ट होकर गिर सकता है।

इस मायाके आकर्षणसे साधक तभी बाहर निकल सकता है, जब गुरुभक्ति सहस्रारसे नीचे उतरकर साधकका हाथ पकड़कर उसे ऊपर उठा ले। इसीलिये दादूदयाल कहते हैं—

बहु बंधन सौं बाँधियो एक बिचारो जीव।
अपने बल छूटे नहीं छोडणहारा पीव॥

आज्ञाचक्र ही मनश्चक्र है। यहाँतक अन्तःकरणका क्षेत्र है और अन्तःकरण (बुद्धि, मन, चित्त, अहंकार) कालनिर्मित है। अतः बुद्ध्यादि सभी कालके बालक हैं। इसलिये कालातीत और गुणातीत जो आत्मतत्त्व है, उसे प्राप्त नहीं कर सकते; क्योंकि वहाँतक उनकी गति नहीं है। भागवतकार कालातीत भगवान् विष्णुके परमपदका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

न यत्र कालेऽनिमिषां परः प्रभुः
कुतो नु देवा जगतां य ईशिरे।
न यत्र सत्त्वं न रजस्तमश्च
न वै विकारो न महान् प्रधानम्॥
परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद्
यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः।
विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा
हृदोपगुह्यार्हपदं पदे पदे॥

(श्रीमद्भा० २।२।१७-१८)

इस स्वरूपावस्थामें सत्त्वगुण भी नहीं है, फिर रजोगुण और तमोगुणकी तो बात ही क्या है। अहंकार, महत्तत्त्व और प्रकृतिका भी वहाँ अस्तित्व नहीं है। उस स्थितिमें जब देवताओंके नियामक कालका भी प्रभाव नहीं रह जाता, तब देवता और उनके अधीन रहनेवाले प्राणी तो रह ही कैसे सकते हैं?

योगी लोग 'यह नहीं, यह नहीं' इस प्रकार परमात्मासे भिन्न पदार्थोंका त्याग करना चाहते हैं और शरीर तथा उसके सम्बन्धी पदार्थोंमें आत्मबुद्धिका त्याग करके हृदयके द्वारा पद-पदपर भगवान्‌के जिस परमपूज्य स्वरूपका आलिङ्गन करते हुए अनन्य प्रेमसे परिपूर्ण रहते हैं, वही भगवान् विष्णुका परम पद है। इस विषयमें समस्त शास्त्रोंकी सम्मति है।

यह बात सत्य है कि वे परम पुरुष परमात्मा मन और बुद्धिके परे हैं। परंतु यह बात भी उतनी ही सत्य है कि यदि वे मन, बुद्धि और इन्द्रियोंमें उतरकर अपने प्रिय भक्तोंका कल्याण करना चाहें तो उन्हें कौन रोक सकता है। क्योंकि वे कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम् सर्वथा समर्थ हैं।

महाभारतका युद्ध चल रहा था। भीष्मपितामहके भयंकर आक्रमणसे पाण्डवोंकी सेना पराजित होकर भाग रही थी। भगवान् श्रीकृष्णने इस युद्धमें शस्त्र न उठानेकी प्रतिज्ञा कर रखी थी, परंतु उस समय अपने प्रेमी भक्त पाण्डवोंको घोर संकटमें पड़ा देखकर भीष्मपितामहपर आक्रमण करनेके लिये भगवान् कृष्ण सुदर्शनचक्र धारण करके 'रथाङ्गपाणि' बन गये और युद्धके बीचमें सात्यकिको सम्बोधित करके उन्होंने यह उद्घोष किया—

निहत्य भीष्मं सगणं प्रसह्य

द्रोणं च शैनेय रथप्रवीरौ।
प्रीतिं करिष्यामि धनञ्जयस्य
राज्ञश्च भीमस्य तथाश्विनोश्च॥
निहत्य सर्वान् धृतराष्ट्रपुत्रां-
स्तत्पक्षिणो ये च नरेन्द्रमुख्याः।
राज्येन राजानमजातशत्रुं
सम्पादयिष्याम्यहमद्य हृष्टः॥

(महाभारत, भीष्मपर्व ५९।८६-८७)

'सात्यके! सहायक गणोंसहित भीष्म और द्रोण—इन दोनों वीर महारथियोंको युद्धमें मारकर मैं अर्जुन, राजा युधिष्ठिर, भीमसेन तथा अश्विनीकुमारोंके अवतार नकुल और सहदेवको प्रसन्न करूँगा। धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंको तथा उनके पक्षमें आये हुए सभी श्रेष्ठ नरेशोंको मारकर मैं प्रसन्नतापूर्वक आज अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरको राज्यसे सम्पन्न कर दूँगा।'

इस प्रकारकी गर्जना करके भगवान् कृष्ण रथसे नीचे उतरे और सुदर्शनचक्रसे भीष्मपितामहका वध करनेके लिये झपटे, उस समय अर्जुनने बड़ी कठिनाईसे उन्हें रोका।

भक्तको कुण्डलिनी-शक्तिके जागरण तथा आरोहणकी कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती। पराभक्तिके कारण उसकी कुण्डलिनी स्वतः जाग्रत् होकर बिना किसी प्रयासके ही सहस्रारचक्रतक पहुँच जाती है।

बड़े-बड़े ज्ञानी और योगी अपने पुरुषार्थके बलपर आज्ञाचक्रतक पहुँचकर वहीं अटक जाते हैं और आगे नहीं बढ़ पाते। तब भगवान्‌के शरणापन्न होकर पुकारते हैं—'हे भगवन्! यहाँसे आगे बढ़ना हमारी सामर्थ्यके बाहर है, अब आप ही सँभाल लें, हम आपकी ही कृपाकी प्रतीक्षा करते हैं, हमारा हाथ पकड़कर ऊपर उठा लें।'

किंतु भक्त तो प्रारम्भसे ही अपना सारा प्रयास और पुरुषार्थ छोड़कर तथा अपनेको पूर्ण असहाय मानकर अपना हाथ भगवान्‌की ओर बढ़ाकर रो-रोकर पुकारता है—

संसारकूपे पतितो ह्यगाधे मोहान्धपूर्णे विषयातिसक्तः।
करावलम्बं मम देहि नाथ गोविन्द दामोदर माधवेति॥

'हे नाथ! हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! मैं विषयोंमें आसक्त जीव मोहान्धपूर्ण इस अगाध संसारकूपमें

पड़ा हुआ हूँ, अतः मैं अपने उद्धारके लिये अपना हाथ आपकी ओर बढ़ा रहा हूँ, मुझे सहारा दीजिये और मेरा हाथ पकड़कर इस संसारकूपसे बाहर निकालिये।'

वे परम कृपालु, दयाके सागर करावलम्बन तो सभीको देते हैं, क्योंकि शरणागतकी कभी उपेक्षा नहीं करते, परंतु कुण्डलिनीयोगका साधक इतना क्लेश उठाकर बादमें शरणापन्न होता है और भक्त बिना क्लेश उठाये पहिले ही प्रपन्न हो जाता है।

मूलतः सारी भारतीय साधना एवं उपासना-पद्धतियाँ एक ही लक्ष्यकी ओर प्रवृत्त होती हैं, वह स्थायी परम शान्ति है और परमात्मा भी '**शान्तं शिवं चतुर्थमद्वैतं मन्यन्ते**'के अनुसार विशुद्ध विज्ञानमय नित्य एकरस, शान्त, सुस्थिर रहनेवाले हैं, उन्हें ही पूर्ण परब्रह्म, शिव, विष्णु, शक्ति, गणेश आदि अनेक नामोंसे निर्दिष्ट किया जाता है। वे ही तत्त्ववेत्ताओंके परम तत्त्व, वेदान्तियोंके विशुद्ध विज्ञान, योगियोंके परमात्मा और भक्तोंके करुणावरुणालय भगवान् और शाक्तोंकी जगन्माता विज्ञानमयी कुण्डलिनी शक्ति हैं। वे दूर नहीं, सभीके हृदयमें ही संनिविष्ट हैं। शरणागति आदि साधनोंसे उनका आत्मामें ही दर्शन कर समस्त हृदयग्रन्थि-वासनाजालका विच्छेद कर सम्पूर्ण संशयोंसे और सभी प्रकारके संचित, प्रारब्ध तथा क्रियमाण आदि कर्मोंसे मुक्त होकर साधक स्व-स्वरूपमें स्थित होकर परम शान्त और कृतकृत्य हो जाता है।
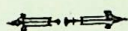
भगवन्नामकी चमत्कारी महिमा

(श्रीबनवारीलालजी गोयन्का)

(१) भगवन्नाम लेना जबसे शुरू किया, समझना चाहिये कि तभीसे जीवनकी असली शुरुआत हुई है।

(२) भगवन्नाममें ऐसी अलौकिक शक्ति है कि वह क्षणभरमें महान्-से-महान् गंदगीको धोकर परम निर्मल एवं शुद्ध कर डालती है।

(३) नाम लेनेवालेका भला होनेमें किंचित् भी संदेह नहीं है।

(४) नाम और नामी दो वस्तु नहीं हैं।

(५) भगवन्नाम पाप धो देगा, विशुद्ध कर देगा, भगवान्से मिलनेकी आतुरता पैदा कर देगा।

(६) भगवन्नाम जीभपर आते ही ऐसा सोचना चाहिये कि भगवान्के साथ हमारा स्पर्श हो रहा है।

(७) भगवन्नामके समान विशुद्ध करनेवाली अन्य कोई वस्तु नहीं है।

(८) जहाँ भगवन्नामका जोर-जोरसे कीर्तन होता है, वहाँका सारा वायुमण्डल महान् पवित्र हो जाता है।

(९) भगवान्के नामका जप सुबह आँख खुलते ही शुरू कर दे और रात्रिको जबतक जगता रहे, तबतक चलता रहे।

(१०) भगवन्नामका उच्चारण करते समय महान्-से-महान् रसका अनुभव करे और ऐसी भावना करे कि मेरे शरीरमें जो साढ़े तीन करोड़ रोम हैं, उन सबसे भगवन्नामका ही उच्चारण हो रहा है।

(११) जीभसे नाम लेते समय कानसे उसे ठीक-ठीक सुने तो वह ध्यानसहित नाम-जप हो गया।

(१२) इस कलियुगमें और साधन भले ही कठिन हों, पर जीभसे नाम लेनेमें कोई कठिनाई नहीं है।

(१३) नाम जपते जाओ और भवसागरसे तरते जाओ—गोस्वामीजीने कहा है—

गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास ॥

(१४) भगवन्नामको जिसने अपना लिया भगवान् उसके अनायास ही अपने बन जाते हैं।

(१५) भगवन्नाम भगवान्के चरणोंमें भक्ति लगा देगा।

साधकोंके प्रति—

करणसे अतीत तत्त्व

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

उपनिषदोंमें आया है कि मनके द्वारा परमात्मतत्त्वको प्राप्त नहीं किया जा सकता; जैसे—

१. यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्। (केन० १। ५)

२. न तत्र चक्षुर्गच्छति न वागच्छति नो मनः।

३. नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।

(कठ० २। ३। १२)

परंतु इसके साथ ही मनके द्वारा परमात्मतत्त्वको प्राप्त करनेकी भी बात आयी है; जैसे—**१. 'मनसैवानुद्रष्टव्यम्'** (बृहदा० ४। ४। १९), **२. मनसैवेदमाप्तव्यम्'** (कठ० २। १। ११)

—इन दोनों बातोंका सामञ्जस्य कैसे हो, इसपर कुछ विचार किया जाता है।

परमात्मतत्त्वको प्राप्त करनेके साधन दो प्रकारके हैं—करणसापेक्ष अर्थात् क्रियाप्रधान साधन और करणनिरपेक्ष अर्थात् विवेकप्रधान साधन। करणसापेक्ष साधनमें अन्तःकरणकी प्रधानता रहती है और करणनिरपेक्ष साधनमें विवेकपूर्वक अन्तःकरणसे सम्बन्ध-विच्छेदकी प्रधानता रहती है। अतः उपनिषदोंमें आये **'यन्मनसा न मनुते'** आदि पदोंमें करणनिरपेक्ष साधनकी बात कही गयी है और **'मनसैवानुद्रष्टव्यम्'** पदमें करणसापेक्ष साधन (ध्यानयोग) की बात कही गयी है। साधन चाहे करणसापेक्ष हो, चाहे करणनिरपेक्ष हो, परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति करणनिरपेक्षतासे अर्थात् विवेककी प्रधानतासे ही होती है। कारण कि परमात्मतत्त्व करणसे अतीत है; अतः कोई भी करण वहाँतक नहीं पहुँचता।

दृष्टान्तरूपसे यह कहा जा सकता है कि **'यन्मनसा न मनुते'**आदि पदोंमें फलव्याप्ति है और **'मनसैवानुद्रष्टव्यम्'** पदमें वृत्तिव्याप्ति है। परंतु दार्ष्टान्तरूपसे यह बात ठीक नहीं बैठती। वास्तवमें परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिमें न वृत्तिव्याप्ति चलती है, न फलव्याप्ति।

परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिमें वृत्तिव्याप्ति तभी हो सकती है, जब वह वृत्ति (मन-बुद्धि) का विषय हो। परंतु वह वृत्तिका विषय है ही नहीं; वृत्ति वहाँतक पहुँचती ही नहीं। करणरहित परमात्मतत्त्वमें वृत्ति (करण) कैसे सम्भव है? अनुत्पन्न निर्विकल्प तत्त्वमें उत्पन्न और नष्ट होनेवाली वृत्ति कैसे हो सकती है? यदि चेतन तत्त्वमें वृत्ति मानें तो वह गुणातीत एवं निर्विकार कैसे हुआ?

पकड़में आनेवाली चीज छोटी होती है और पकड़नेवाला बड़ा होता है। नेत्रोंसे वही वस्तु दीखती है, जो नेत्रोंकी पकड़में (अन्तर्गत) आती है। इन्द्रियोंसे उसी वस्तुका ज्ञान होता है, जो इन्द्रियोंसे छोटा होता है। कार्यमें कारण तो रहता है, पर कार्यके अन्तर्गत कारण नहीं आ सकता; जैसे—घड़ेमें पृथ्वी (मिट्टी) तो रहती है, पर घड़ेके अन्तर्गत पृथ्वी नहीं आ सकती। प्रकृति कारण है और वृत्ति कार्य है। जब वृत्तिसे प्रकृतिको भी नहीं पकड़ा जा सकता, तो फिर प्रकृतिसे अतीत परमात्मतत्त्वको कैसे पकड़ा जा सकता है? जब परमात्मतत्त्वतक प्रकृति भी नहीं पहुँचती, तो फिर प्रकृतिका कार्य वृत्ति वहाँतक कैसे पहुँचेगी?

'मनसैवानुद्रष्टव्यम्' में मनका सांसारिक विषयोंसे, जड़तासे विमुख होना है। मन जड़तासे तो हट जाता है और चेतन तत्त्वको पकड़ नहीं सकता, तब वह थककर स्वतः शान्त हो जाता है*। तात्पर्य है कि ध्यानयोगमें साधक अपने मनको संसारसे हटाकर परमात्मामें लगानेका अभ्यास करता है। मनका संसारसे हटना ही परमात्मामें लगना है। अतः वृत्ति केवल संसारके त्यागमें ही काम आती है। जैसे, लकड़ीको जलाकर अग्नि भी स्वतः शान्त हो जाती है, ऐसे ही संसारका त्याग होनेपर वृत्तिका भी स्वतः त्याग हो जाता है। अतः वास्तवमें वृत्ति संसारकी निवृत्तिमें ही काम आती है, तत्त्वकी प्राप्तिमें नहीं। इसलिये **'मनसैवानुद्रष्टव्यम्'** का तात्पर्य निषेधमें ही है, विधिमें नहीं †।

---

* यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया। यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति॥ (गीता ६। २०)

† गीतामें आये 'ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति' (१३। २४), 'चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते' (६। १८), 'आत्मसंस्थं [illegible]' ([illegible]), 'पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः' ([illegible]) आदि पदोंका भी यही भाव समझना चाहिये।

जैसे कोई राजा रथपर बैठकर रनिवास जाता है तो वह रथको बाहर ही छोड़ देता है और अकेले रनिवासके भीतर जाता है, ऐसे ही करणसापेक्ष साधन करनेवाला भी अन्तमें करणोंसे सम्बन्ध-विच्छेद करके अकेले (स्वयं) ही परमात्मतत्त्वमें प्रवेश करता है। जैसे रथके सम्बन्धसे मनुष्य 'रथी' कहलाता है, ऐसे ही अहम्‌के सम्बन्धसे आत्मा 'जीव' कहलाता है। जब वह अहम्‌का सम्बन्ध छोड़ देता है, तब जीवपना नहीं रहता, प्रत्युत एक तत्त्व रहता है। इसलिये जीवको ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होती, प्रत्युत ब्रह्मको ही ब्रह्मकी प्राप्ति होती है—**'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति'** (बृहदा० ४।४।६)। तात्पर्य है कि जीवभाव मिटनेपर एक ब्रह्म ही ज्यों-का-त्यों रह जाता है।

एक मार्मिक बात है कि जडताके द्वारा जडताका त्याग नहीं हो सकता, प्रत्युत जड-उपहित चेतनके द्वारा ही जडताका त्याग हो सकता है। अतः वृत्ति-उपहित चेतन ही संसारकी निवृत्ति करता है, वृत्ति नहीं। कारण कि वृत्ति खुद ही जड है, फिर वह जडताकी निवृत्ति कैसे करेगी?

मुख्य बात यह है कि जडके द्वारा चेतनका ज्ञान नहीं होता। अगर जडके द्वारा चेतनका ज्ञान हो जाय तो विशेषता जडकी ही हुई, चेतनकी नहीं; क्योंकि जड ज्ञानका जनक हुआ और ज्ञान जन्य हुआ।

'यन्मनसा न मनुते' और **'मनसैवानुद्रष्टव्यम्'** आदि पदोंसे यह भाव भी निकलता है कि मन-बुद्धि तो परमात्मातक नहीं पहुँच सकते, पर सर्वसमर्थ तथा सर्वव्यापी परमात्मा मन-बुद्धितक पहुँच ही सकते हैं। इतना ही नहीं, मन-बुद्धिके द्वारा परमात्माका ही ग्रहण होता है; क्योंकि परमात्माके सिवाय और कोई सत्ता विद्यमान है ही नहीं। इसलिये भगवान् कहते हैं—

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा॥

(श्रीमद्भा० ११।१३।२४)

'मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियोंसे जो कुछ ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ। अतः मेरे सिवाय दूसरा कुछ भी नहीं है—यह सिद्धान्त आप विचारपूर्वक शीघ्र समझ लें अर्थात् स्वीकार कर लें।'

प्रश्न—गीतामें परमात्मप्राप्तिसे होनेवाले आत्यन्तिक सुखको बुद्धिग्राह्य कहा गया है—**'सुखमात्यन्तिकं यत्तद्-बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्'** (६।२१)। जब प्रकृतिसे अतीत सुखको बुद्धि नहीं पकड़ सकती, तो वह बुद्धिग्राह्य कैसे हुआ?

उत्तर—आत्यन्तिक सुखको बुद्धिग्राह्य कहनेका यह तात्पर्य नहीं है कि वह बुद्धिकी पकड़में आनेवाला है। बुद्धि तो प्रकृतिका कार्य है, फिर वह प्रकृतिसे अतीत सुखको कैसे पकड़ सकती है? इसलिये अविनाशी सुखको बुद्धिग्राह्य कहनेका तात्पर्य उस सुखको तामस सुखसे विलक्षण बतानेमें ही है। निद्रा, आलस्य और प्रमादसे उत्पन्न होनेवाला सुख तामस होता है*। गाढ़ निद्रा (सुषुप्ति)में बुद्धि अविद्यामें लीन हो जाती है और आलस्य तथा प्रमादमें बुद्धि पूरी तरह जाग्रत् नहीं रहती। परंतु स्वतःसिद्ध अविनाशी सुखमें बुद्धि अविद्यामें लीन नहीं होती, प्रत्युत पूरी तरह जाग्रत् रहती है। अतः बुद्धिकी जागृतिकी दृष्टिसे ही उसको 'बुद्धिग्राह्य' कहा गया है। वास्तवमें बुद्धि वहाँतक पहुँचती ही नहीं। इसी तरह अविनाशी सुखको 'आत्यन्तिक' कहकर उसको सात्त्विक सुखसे और 'अतीन्द्रिय' कहकर उसको राजस सुखसे विलक्षण बताया गया है।

जैसे दर्पणमें सूर्य नहीं आता, प्रत्युत सूर्यका बिम्ब आता है, ऐसे ही बुद्धिमें वह आत्यन्तिक सुख नहीं आता, प्रत्युत उस सुखका बिम्ब, आभास आता है, इसलिये भी उसको 'बुद्धिग्राह्य' कहा गया है।

तात्पर्य यह हुआ कि स्वयंका शाश्वत सुख सात्त्विक, राजस और तामस सुखसे भी अत्यन्त विलक्षण अर्थात् गुणातीत है। उसको बुद्धिग्राह्य कहनेपर भी वास्तवमें वह बुद्धिसे सर्वथा अतीत है—**'शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते॥'** (गीता १३।३१)।

उपनिषद्‌में आया है—

*यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः। निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्॥ (गीता १८।३९)

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः ॥
(कठ० १ । ३ । १०-११)

'इन्द्रियोंसे विषय पर हैं, विषयोंसे मन पर है, मनसे बुद्धि पर है और बुद्धिसे महान् आत्मा (महत्तत्त्व) पर है, महत्तत्त्वसे अव्यक्त (मूल प्रकृति) पर है और अव्यक्तसे भी पुरुष पर है। पुरुषसे पर और कुछ नहीं है। वही परा काष्ठा (अन्तिम सीमा) है, वही परा गति है।'

यह कैसा मनोरञ्जन ?

छोटे बच्चे सर्कस देखनेके लिये मचलते रहते हैं। वे क्या जानें कि जिन जानवरोंको देखकर वे आनन्दित होते हैं, उनकी क्या दुर्दशा होती है। प्रायः बड़ोंको भी इसका अंदाज नहीं, क्योंकि सर्कसकी चकाचौंधसे उन असहाय प्राणियोंकी वेदना ढक-सी जाती है।

वास्तविकता तो यह है कि केवल जंगली प्राणी ही सर्कसके उपयोगी होता है। जंगली प्राणी मनुष्यसे जितना भयभीत होता है, उतना चिड़ियाघर या पालतू पशुके बच्चे नहीं होते। हर एक जंगली शिशुको पकड़नेके लिये उसकी मा-समेत उसकी जातिके कई जानवरोंकी हत्या करनी पड़ती है। डरे हुए बच्चेको पिंजरेसे बाहर निकालनेके लिये उसे या तो तपे हुए लोहेसे भोंका जाता है या उसके पिंजरेके घासको आग लगा दी जाती है। भूखसे बेचैन करके शरीरके नाजुक स्थानोंमें नुकीले लोहोंसे भोंक-भोंक कर उसे शिक्षा दी जाती है। क्या ही विडम्बना है कि इंसान अपनी इंसानियत छोड़कर मनोरञ्जनके नामपर बेबस प्राणियोंको क्रूरतापूर्वक सताता है!

सर्कसके मालिक यह हास्यास्पद दावा करते हैं कि पशुओंके प्रति कोई अत्याचार नहीं किया जाता, लेकिन इन पशुओंकी दयनीय स्थितिपर एक दृष्टि डालते ही स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें पौष्टिक खुराक, इलाज और सहानुभूतिकी कितनी तीव्र आवश्यकता है। छोटे-छोटे पिंजरोंमें न तो वे सिर उठा सकते हैं, न घूम सकते हैं और न शान्तिसे आराम ही कर सकते हैं। प्रतिवर्ष लगभग दो-तीन महीने कष्टकर यात्रामें ही बिताते हैं, जिससे उन्हें चोटें पहुँचती हैं, तीव्र मानसिक एवं शारीरिक कष्ट होता है और कइयोंकी तो मृत्यु भी हो जाती है। सर्कसके पशु अपनी सहज उम्रका चौथाई हिस्सा मुश्किलसे जी पाते हैं और वह जीवन भी मौतके समान कष्टकारक ही होता है। कहाँ जंगलका बादशाह और कहाँ सर्कसका मारा-पीटा शेर!

इंग्लैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया, तुर्की और जर्मनी आदि अनेक देशोंमें अब इस अमानुषी अत्याचारपर प्रतिबन्ध हो चुका है। कितने शर्मकी बात है कि जो देश महात्मा गाँधीकी अहिंसा, गौतम बुद्धकी करुणा तथा गीताके '**सर्वभूतहिते रताः**'से गौरवान्वित हुआ है, वह अब ऐसी अत्याचारी निर्दयता चुपचाप चलने दे रहा है। क्रूरताके प्रति आँखें मीचना, क्रूरताको प्रोत्साहन देनेके बराबर है। हम जब अपने बच्चोंको ऐसे दृश्य दिखाते हैं, तब उनके कोमल हृदयकी संवेदनशीलताको क्रूरतामें बदल देते हैं।

इसका परिणाम कितना भयानक होगा, यह समझना अत्यावश्यक है। यूँ ही दिन-प्रति-दिन समाजमें लोभ बढ़ रहा है, क्रूरता बढ़ रही है। अत्याचार पनपता जा रहा है। मानव पशुतुल्य हो रहा है; ईमानदारी, करुणा, कर्तव्य-पालनसे वञ्चित होता जा रहा है और साथ-ही-साथ वह जीवनकी सुख-शान्ति खोता जा रहा है। अत्याचार करनेवालेको नियति कभी नहीं छोड़ती। दयासे वञ्चित मनुष्य कभी सुखसे रह नहीं सकता। यदि आपको समाजका, अपने बच्चोंके भविष्यका पतन कराना हो तो मानवताके आदर्श, धर्माचरण और अन्तरात्माकी आवाजको छोड़कर कलियुगके अत्याचारोंका समर्थन होने दें। क्या आप यही चाहते हैं? यदि नहीं, तो आइये, अहिंसा, सत्य, प्रेम और प्राणिमात्रपर दयाका संकल्प लें और सभी जीवोंके अन्तरात्मामें स्थित परमात्म-प्रभुका दर्शन कर उनकी सेवा करें। यह जीव-सेवा ही प्रभु-सेवा बनकर हमारा परम कल्याण कर देगी।

—पूर्णिमा एल० कुमार

कौशिक ऋषिको धर्मकी शिक्षा मिली

(डॉ॰ श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्॰ए॰, पी-एच्॰डी॰)

'इस नगरीमें क्या कोई ज्ञानी व्याध रहता है?'

'ऋषिवर! उसका नाम बतायें तो घर बतानेमें आसानी रहेगी?'

कौशिक ऋषि बोले—'उस ज्ञानीका नाम तो हमें मालूम नहीं है।

'कुछ तो बताइये उसके विषयमें? तभी उसका घर मालूम हो सकेगा।'

ऋषिने कहा—'हम केवल इतना कह सकते हैं कि उस व्याधको नगरके क्या, बाहरके भी भक्तलोग जानते हैं। उसकी भक्ति, प्रेम, पूजा-पाठकी नगरके बाहर भी यथेष्ट चर्चा है। उन्हें कसाई समझकर कोई उनके घर नहीं जाना पसंद करता; किंतु भक्ति, ज्ञान, अध्यात्म, सेवा, प्रेम, आदर आदि दिव्य भाव उनके जीवनसे जुड़े हुए हैं। उनके ज्ञानकी चर्चा सुनकर ही हम उनके दर्शन करने राजा जनककी इस पुण्य मिथिला नगरीमें आये हैं।'

'ओहो! अब याद आया! आप धर्मव्याधकी बात कर रहे हैं।'

'हाँ, हाँ, उन्हींकी तो बातें कर रहा हूँ। उनमें मनुष्यत्व है। वे नीतिधर्मके आचार्य हैं, भक्त हैं और ज्ञानी पुण्यात्मा हैं। उनसे बहुत कुछ शिक्षा मिल सकती है।'

'परंतु उनका पेशा तो कसाईका है, जो मांस बेचता है।'

'ज्ञान किसीके पास हो, जीवनका अनुभव किसी बुजुर्गका हो, वह अवश्य लेना चाहिये। उससे जीवनमें लाभ ही होता है। विचारकर भले मार्गमें अपनेको ले जानेमें ही मनुष्यत्व है। इसीका नाम नीति है। क्या उपयोगी है? किससे व्यवहारमें लाभ होगा? समाजमें दूसरोंसे कैसा बर्ताव करें?—जबतक हम यह व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त नहीं करते, तबतक धर्मका अर्थ ही नहीं समझ सकते।'

'ऋषिवर! चलिये उसका घर बताता हूँ।'

—यह सुनकर ऋषि पीछे-पीछे चल दिये। अन्तमें एक मामूलीसे घरके बाहर दूकानपर बैठा एक साधारण सीधा-सादा गरीब व्यक्ति मिला। 'व्याध महाराज! आपसे मिलने राजधानी मिथिला नगरीमें कौशिक ऋषि आये हैं।' आगन्तुकने उस व्यक्तिसे कहा।

वह व्यक्ति दूकानसे उठा। हाथ धोये। फिर आदरसहित ऋषिके चरण स्पर्श किये। 'महर्षे! आपके दर्शनोंसे मैं आज धन्य हो गया। मेरा अहोभाग्य है कि इस व्याधकी कुटियामें आप-जैसे ज्ञानी महात्मा आये हैं। पधारिये, आपका स्वागत है।'

'ज्ञान तो मैं आपसे लेने आया हूँ, महाराज!'

'मुझसे और ज्ञान? मैं आपका मतलब नहीं समझा ऋषिवर!'

'आपके ज्ञान और अनुभवकी सर्वत्र चर्चा है। लोग आपके दर्शनोंको आते हैं और आपसे ज्ञान प्राप्त करते हैं। कहा भी है कि जिसने खुद जीवन जीकर अनुभव किया है, वही ज्ञान देनेका पात्र भी है। इस दृष्टिसे आप ज्ञानी ही नहीं महाज्ञानी हैं।'

व्याध बहुत देरतक ज्ञानचर्चा-धर्मचर्चा करता रहा। फिर हाथ जोड़कर बोला—'ऋषिवर! मैंने अभीतक आपसे जो कुछ कहा, वह मुखसे कह सुनाया। जो प्रत्यक्ष देखते हैं, वही स्थायी होता है।'

'क्या कुछ और भी शेष है?' ऋषिने उत्सुकतापूर्वक व्याधसे पूछा।

'नहीं, ऋषिवर! जो कुछ मुझे मुँहसे कहना था, वह तो मैंने कह दिया, किंतु सच्चा काममें आनेवाला व्यावहारिक ज्ञान वह है जो मनुष्यके दैनिक, सामाजिक आचरणसे प्रकट हो। कथनी और करनीमें अन्तर नहीं होना चाहिये। धर्म तो प्रत्यक्ष जीनेकी कला है। उसके अनुसार जो जिंदगी जीयी जाय, वही व्यावहारिक धर्म है। अब मैं आपको सब धर्मोंका सार प्रत्यक्ष दिखाता हूँ। जीवित धर्म भी देखनेका कष्ट करें।'

ऋषि कौशिक कुछ भी समझ न पाये। उसे देखते रह गये।

वे चुपचाप धर्मव्याधके पीछे-पीछे चल दिये। व्याध ऋषिको अपने घरके भीतर ले गया।

वहाँ एक बड़े स्वच्छ कमरेमें, भगवान्‌के सिंहासनकी तरह धर्मव्याधके वृद्ध माता-पिता स्वच्छ श्वेत वस्त्र पहिने एक

उत्तम आसनपर बैठे हुए थे। व्याधने अपने माता-पिताके दर्शन कर उनके चरणोंमें मस्तक नवाया, उन्हें साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया।

'दीर्घायु हो, धर्म तेरी रक्षा करे बेटा!' माता-पिताने आशीर्वाद दिया।

फिर व्याधने कौशिक ऋषिका अपने वयोवृद्ध माता-पितासे परिचय कराया।

व्याध बोला—'ऋषिश्रेष्ठ! मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ। ज्ञानकी बड़ी-बड़ी पुस्तकें मैंने नहीं पढ़ी हैं। मैंने ईश्वरको नहीं देखा है।'

'फिर तुम्हारे आराध्य देवता, तुम्हारे घरका मन्दिर जिसमें तुम नित्य पूजा करते हो, वह तो दिखलाओ? देखें, तुम्हारे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, हनुमान्, देवी भगवती कौन आराध्य देवता हैं, जिनकी तुम पूजा-अर्चना करते हो?'

व्याधने अत्यन्त विनीत भावसे कहा—'ऋषिवर! मैंने बहुतसे देवी-देवताओंके नाम सुने हैं। उनकी तरह-तरहकी मूर्तियाँ भी मन्दिरोंमें देखी हैं। उनके गुणोंका बहुत माहात्म्य है, पर मेरे तो चाहे देव कहिये, यज्ञ कहिये, वेद कहिये, जो कोई भी पूज्य देवता हैं, ये मेरे वृद्ध, अशक्त, जर्जर माता-पिता ही हैं। ये पत्थरके नहीं, हाड़-मांसके चलते-फिरते-बोलते-उपदेश देते देवता हैं। मैं, मेरी धर्मपत्नी, मेरा पुत्र, मेरे मित्र—सभी इनकी सेवा-पूजामें लगे रहते हैं। मैं देवताओंकी तरह अपने हाथसे इन्हें स्नान कराता हूँ और आप ही नित्य भोजन कराता हूँ। मेरा ऐसा अनुभव है कि जो कोई अपना भला चाहे, जो बालक, महिला, युवक अपनी उन्नतिकी आकाङ्क्षा करे, उसे माता-पिताकी निःस्वार्थ सेवा करनी चाहिये। यही मेरा धर्म है। इसी धर्मका मैं जीवनभर पालन करता रहा हूँ।'

ऋषिने कहा—'मुझे धर्मका मर्म तो बतलाइये व्याधश्रेष्ठ!'

धर्मात्मा व्याध बोला—'मा-बापकी सेवासे ही मैं ज्ञानी बना ऋषिवर! मेरा विश्वास है कि मा-बापकी सेवा ही भक्ति है। जो मा-बापकी भक्ति करेंगे, वे ही परमेश्वरकी भक्तिको जानेंगे। इस भक्तिमें सम्मानभरी और प्रेमभरी सेवा और वैसा ही आज्ञा-पालन होता है। मन, वाणी और कर्म तीनोंसे सम्मान होना चाहिये। उनके बारेमें कोई अनुचित विचार न मनमें लाना चाहिये और न उनके दोषोंको मनमें स्थान देना चाहिये। बड़े हमसे आखिर बड़े हैं। उनमें दोष निकालना हमारा काम नहीं है। दोष-दर्शनसे मनुष्यमें दोष-दुर्गुण ही विकसित होते हैं। हमारा कर्तव्य तो उनकी निःस्वार्थ सेवा करना है। यह सबसे बड़ा धर्म है।'

ऋषि चुपचाप सुनते रहे। अन्तमें बोले—'महात्मन्! आज मुझे प्रत्यक्ष यह मालूम हुआ कि **'मातृदेवो भव,' 'पितृदेवो भव'** का रहस्य क्या है। आज आपने मेरा उद्धार कर दिया[1]।

शत्रोरपि गुणा ग्राह्याः। (शुक्रनीति ३। ६७)

गुण चाहे किसीमें हों (नीच व्यक्ति यहाँतक कि शत्रु तकमें हों) समझदार व्यक्तिको वे गुण अवश्य ग्रहण कर लेने चाहिये।

आर्त पक्षीकी प्रार्थना

अब कैं राखि लेहु भगवान।
हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम डरिया, पारधि साध्यौ बान॥
ताकैं डर मैं भाज्यौ चाहत, ऊपर ढुक्यौ सचान।
दुहूँ भाँति दुख भयो दयामय, कौन उबारै प्रान॥
सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी, कर छूट्यौ संधान।
'सूरदास' सर लग्यौ सचानहिं, जय जय कृपानिधान॥

१ [illegible] विस्तारसे वर्णित है।

हमारे सांस्कृतिक मूल्य

(डॉ॰ श्रीरामकृष्णजी सराफ)

सांस्कृतिक चेतनाके धरातलपर हमारा देश विश्वमें सदा अग्रणी रहा है। भारतमें नैतिक मूल्योंकी सदा संरक्षा हुई है। यहाँ तो दया, प्रेम, परोपकार, कर्तव्यपालनके एक-दो नहीं, अपितु असंख्य उदाहरण भरे पड़े हैं। भगवान् शिवने स्वयं गरल-पान कर लिया, किंतु संसारको आँच नहीं आने दी और प्राणिमात्रको विनाशसे बचा लिया। राजा शिबिने अपने शरीरका मांस स्वयं श्येनको अर्पित कर दिया, किंतु एक कपोतके प्राणोंकी रक्षा की। इसी प्रकार महर्षि दधीचिने अपने शरीरकी अस्थियोंको हँसते-हँसते देवताओंको दान कर दिया, ताकि दानवीशक्तिका उच्छेद हो सके।

श्रीरामकी आज्ञाकारिता और कर्तव्यपालनका उदाहरण हमारे सामने है। अपने पिता महाराज दशरथके आदेशको शिरोधार्य कर बिना कुछ अन्यथा विचार किये राजीवलोचन रामचन्द्र अयोध्याके सिंहासनको छोड़कर चौदह वर्षके लिये वनकी ओर चल पड़े। न तो राज्याभिषेकके समाचारको सुनकर वे असामान्य रूपसे प्रसन्न हुए और न वन जानेके अप्रत्याशित आदेशसे उनके मुखपर विषादकी कोई रेखा दिखायी दी। जंगलमें सीताहरण-रूप घोर विपत्तिका बिना विचलित हुए उन्होंने सामना किया और उस समय भी यथासमय स्नान, संध्या, देवाराधन आदिमें थोड़ी भी शिथिलता नहीं आने दी। सुदूर दक्षिणमें लंकापर विजय प्राप्त कर लेनेके बाद भी वहाँका काञ्चन-वैभव श्रीरामको अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सका। उन्होंने तो काञ्चनमयी लंकाका आधिपत्य विभीषणको ही उपहाररूपमें दे दिया।

श्रीकृष्णके निःस्पृह नेतृत्वका उदाहरण हमारे समक्ष है। वासुदेव श्रीकृष्णने अल्प अवस्थामें ही जिस अपूर्व संगठन-शक्ति और समाजके नेतृत्वकी क्षमताका उदाहरण प्रस्तुत किया, वह अपने-आपमें महत्त्वपूर्ण है। गोप-समाजमें श्रीकृष्णके निःस्पृह व्यक्तित्वकी छबि विद्यमान थी। कृष्णके नेतृत्वके प्रति उनमें असीम विश्वास था। इसी विश्वासकी पूँजी लेकर बाल-कृष्णने इन्द्र-पूजाका परित्याग कर पर्वत-पूजा प्रारम्भ कर दी। फलस्वरूप वे इन्द्रके कोपभाजन बने। इन्द्रदेवके क्रोधमें घनघोर वृष्टि की, किंतु सूझ-बूझके धनी श्रीकृष्णने इन्द्रकी इस चुनौतीका साहससे सामना किया और व्रजवासियोंको इस घोर विपत्तिसे मुक्ति दिलायी।

भारत ऋषि-मुनियोंका देश है। इन ऋषि-मुनियोंका जीवन सारे देशके लिये आदर्श रहा है। वसिष्ठ, विश्वामित्र, पराशर, व्यास, शुकदेव, अगस्त्य तथा सांदीपनि आदि महर्षियोंका जीवन इस देशके लिये सदा प्रेरणाका स्रोत रहा है। समाजको सन्मार्गकी ओर प्रवृत्त करनेके लिये उन्होंने सदैव प्रेरित किया। जिस देशमें श्रीराम और श्रीकृष्ण-जैसे विशिष्ट महापुरुष अपनी निःस्पृहता, आज्ञाकारिता, जन्मभूमिप्रेम, अनुशासनप्रियता, साहस और समाज-नेतृत्वका उदाहरण प्रस्तुत करें, कोई आश्चर्य नहीं कि देवता भी उस देशकी प्रशंसा करें और अपनी भोगभूमिको छोड़कर इस कर्मभूमिमें आनेके लिये लालायित रहें।

विष्णुपुराण (२।३।२४—२६) में कहा गया है—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥
कर्मण्यसंकल्पिततत्फलानि
संन्यस्य विष्णौ परमात्मभूते।
अवाप्य तां कर्ममहीमनन्ते
तस्मिँल्लयं ये त्वमलाः प्रयान्ति॥
जानीम नैतत् क्व वयं विलीने
स्वर्गप्रदे कर्मणि देहबन्धम्।
प्राप्स्याम धन्याः खलु ते मनुष्या
ये भारते नेन्द्रियविप्रहीनाः॥

'देवगण भी निरन्तर यही गान करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और अपवर्गके मार्गभूत भारतवर्षमें जन्म लिया है तथा जो इस कर्मभूमिमें जन्म लेकर अपने फलाकाङ्क्षासे रहित कर्मोंको परमात्मस्वरूप श्रीविष्णु भगवान्को अर्पण करनेसे निर्मल (पाप-पुण्यसे रहित) होकर उन अनन्तमें ही लीन हो जाते हैं, वे पुरुष हम देवताओंकी अपेक्षा भी अधिक धन्य (बड़भागी) हैं। पता नहीं, अपने स्वर्गप्रद कर्मोंका क्षय होनेपर कहाँ जन्म

ग्रहण करेंगे ? धन्य तो वे ही मनुष्य हैं जो भारतभूमिमें उत्पन्न होकर इन्द्रियोंकी शक्तिसे हीन नहीं हुए हैं।'

वैदिक कालसे लेकर विदेशियोंके आक्रमणके पूर्वतक हमारी सांस्कृतिक धरोहर सदा अक्षुण्ण रही है। किंतु विदेशियोंके आगमनके पश्चात् नैतिकताकी हमारी मूल विरासतमें ह्रास होना प्रारम्भ हुआ और धीरे-धीरे उसमें विकृति आने लगी और हमारे सांस्कृतिक मूल्य छिन्न-भिन्न होने लगे। विदेशी शासकोंकी मान्यता रही है कि यदि इस देशको दीर्घकालतक पराधीन बनाये रखना है तो यहाँकी मूल संस्कृतिको विनष्ट कर देना चाहिये।

हमारे नैतिक और सामाजिक मूल्य बिखर रहे हैं। आज तो यह रोग इतना बढ़ चुका है कि जहाँ दृष्टि जाती है, वहीं जीवनके हर क्षेत्रमें हमारे नैतिक मूल्य और मान्यताएँ नष्ट होती दिखायी पड़ रही हैं। रोग बढ़ता ही जा रहा है। किंतु अब तो अपने भाग्यके विधाता हम स्वयं हैं। अतः सही दिशामें यत्न किया जाना आज परम आवश्यक है। नैतिक एवं सामाजिक मूल्योंकी संस्थापनाके अभावमें स्वार्थ, अविश्वास और भयका वातावरण व्याप्त हो गया है। समाजके आचरणमें यह स्पष्ट दिखायी दे रहा है। जिस देशमें स्वप्नमें दिये गये वचनका भी जाग्रत्-अवस्थामें निर्वाह-पालन करनेके उदाहरण मिलते हैं, वहीं जाग्रत्-अवस्थामें ही दिये वचनोंसे हम मुकर रहे हैं। जिस देशमें तक्षशिला और नालन्दा-जैसे विश्वविद्यालय विद्याके केन्द्र थे, अनुशासनके आख्यान थे, वहीं आज शिक्षा-संस्थाएँ अविद्याका केन्द्र बनती जा रही हैं। विद्या और विद्या-केन्द्रोंका उपहास हो रहा है। सीता, सावित्री, अनसूया, अरुन्धती, अपाला, गार्गी, घोषा, दमयन्ती और मैत्रेयी आदि देवियोंके इस देशमें '**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः**'की भावनाका लोप होता जा रहा है।

इसका परिणाम यह हो रहा है कि हमारे आस-पास असंतोष, असुरक्षा और अविश्वासकी भावना बढ़ रही है। समाजमें अस्थिरता स्थान बना रही है। समाज कमजोर हो रहा है। सामाजिक एवं नैतिक मूल्योंमें गिरावटके कारण समाज आज दिग्भ्रान्त दिखायी देता है। महावीर, बुद्ध, शंकराचार्य, रामकृष्ण, विवेकानन्द-जैसे तपस्वियोंके इस देशमें नैतिक मूल्योंका ह्रास चिन्ताका विषय है। अब समय आ गया है कि हम जागें अन्यथा हमारी अकर्मण्यता हमारे लिये आत्मघाती हो सकती है।

वास्तवमें किसी भी देश अथवा राष्ट्रका कल्याण स्वाध्याय, सदाचार, सत्-शिक्षा और शान्तिके प्रचार-प्रसारसे ही हो सकता है। सबसे बड़ी बात है स्वार्थका परित्याग, 'सादा जीवन उच्च विचार' और 'तपस्यामयी कर्मठता।' अपने दोषोंको देखते हुए उसमें सुधार लाना और दूसरेके गुणोंको महत्त्व देकर उसकी त्रुटियोंको प्रेमसे समझाना। इस प्रकार दया, सौहार्द, प्रेम, परोपकार और सच्ची सद्भावनासे ही देश, राष्ट्र और विश्वका कल्याण सम्भव है। आजका सबसे बड़ा दोष है ईश्वर तथा परलोकपर विश्वासका अभाव। अल्पविद्याके कारण ही अहंकार होता है। संग्रहकी प्रवृत्ति भी घातक है। त्यागसे ही स्थिर पराशान्तिकी प्राप्ति होती है, जिसके बाद कुछ भी प्राप्य नहीं रह जाता। अतः भगवद्गीता, भागवत, रामायण आदि सद्ग्रन्थोंको मार्गदर्शक मानकर आत्माके नित्यत्वपर विश्वास करते हुए निःस्वार्थभावसे स्वयंको तथा राष्ट्रको ऊपर उठानेका प्रयत्न करना चाहिये। ऐसे सत्संकल्पोंकी सिद्धिमें भगवती महामाया और भगवान् सर्वेश्वरकी सहायता भी पूर्णरूपसे होती रहती है।

'खेती करनेवाले सज्जनोंको चाहिये कि वे गाय, बछड़ा, बैल आदिको बेचें नहीं। खेती और गायका परस्पर बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। खेतीसे गाय पुष्ट होती है और गायसे खेती पुष्ट होती है। गोबर और गोमूत्रसे जमीन पुष्ट होती है। ××× ××× ××× अब विदेशी खाद लाकर खेतोंमें डालते हैं तो उससे आरम्भमें कुछ वर्ष खेती अच्छी होगी, पर कुछ वर्षोंके बादमें जमीन उपजाऊ नहीं रहेगी, निकम्मी हो जायगी। विदेशोंमें तो खादसे जमीन खराब हो गयी है और वे लोग बम्बईसे जहाजोंमें गोबर लादकर ले जा रहे हैं, जिससे गोबरसे जमीन ठीक हो जाय।'

—स्वामी श्रीरामसुखदासजी ('किसानोंके लिये शिक्षा'—नई पुस्तकसे)

गीता-तत्त्व-चिन्तन

गीतामें साधकोंकी दो दृष्टियाँ

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

गीतायां द्विविधा दृष्टिर्दृश्यते ज्ञानभक्तयोः।
ज्ञानी गुणमयं सर्वं भक्तः प्रभुमयं जगत्॥

(१)

परमात्मा और संसारका वर्णन गीतामें विविध प्रकारसे हुआ है। वह विविध प्रकार भी साधकोंकी दृष्टिसे ही है। जिन साधकोंकी दृष्टिमें सब कुछ भगवान् ही हैं, भगवान्‌के सिवाय कुछ है ही नहीं, वे 'भक्तियोगी' कहलाते हैं। जिन साधकोंकी दृष्टिमें सब संसार गुणमय है, प्रकृतिजन्य गुणोंके सिवा कुछ है ही नहीं, वे 'ज्ञानयोगी' कहलाते हैं। इस तरह साधकोंकी दो दृष्टियाँ हैं—भक्तिदृष्टि और ज्ञानदृष्टि। श्रद्धा-विश्वासकी मुख्यतासे भक्तियोग चलता है और विवेक-विचारकी मुख्यतासे ज्ञानयोग चलता है।

भक्तियोगमें भक्त ऐसा मानता है कि सब कुछ भगवान् ही हैं—**'वासुदेवः सर्वम्'** (७।१९)। भगवान्‌ने भी कहा है कि मेरे बिना कोई भी चर-अचर प्राणी नहीं है अर्थात् चर-अचर सब कुछ मैं ही हूँ (१०।३९)। सूतसे बनी हुई मालाकी तरह यह सब संसार मुझमें ही ओतप्रोत है (७।७)। ये सात्त्विक, राजस और तामस-भाव भी मेरेसे ही होते हैं, पर मैं उनमें और वे मेरेमें नहीं हैं अर्थात् सब कुछ मैं-ही-मैं हूँ (७।१२)। सत् और असत् अर्थात् जड़ और चेतन जो कुछ है, वह सब मैं ही हूँ (९।१९)। बुद्धि, ज्ञान, असम्मोह आदि भाव मेरेसे ही होते हैं (१०।४-५)। मैं सबका प्रभव अर्थात् मूल कारण हूँ और सब मेरेसे ही चेष्टा करते हैं (१०।८)। दसवें अध्यायमें भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा कि तेरेको जहाँ-कहीं, जिस-किसीमें महत्ता, विलक्षणता, अलौकिकता आदि दीखे उसको मेरी ही समझ (१०।४१)। तात्पर्य है कि वहाँ महत्ता आदिके रूपमें मैं ही हूँ—ऐसा मानकर तेरी दृष्टि केवल मेरी तरफ ही जानी चाहिये।

ज्ञानयोगमें साधक ऐसा मानता है कि प्रकृतिजन्य गुणोंके द्वारा ही सब क्रियाएँ हो रही हैं (३।२७); गुण ही गुणोंमें बरत रहे हैं (३।२८; १४।२३)। इसी दृष्टिसे भगवान्‌ने अठारहवें अध्यायमें सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंके अनुसार ज्ञान, कर्म, कर्ता, बुद्धि, धृति और सुखके तीन-तीन भेद बताये और अन्तमें तीनों गुणोंके प्रकारका उपसंहार करते हुए कहा कि त्रिलोकीमें तीनों गुणोंके सिवाय कुछ नहीं है; जो कुछ दीख रहा है, वह सब त्रिगुणात्मक है (१८।४०)।

(२)

गीतामें भगवान्‌ने एक स्थानपर यह कहा है कि सात्त्विक, राजस और तामस-भाव मेरेसे ही होते हैं (७।१२) और दूसरे स्थानपर कहा है कि सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं (१३।१९; १४।५)। इनमें पहली बात तो भक्तिमार्गकी है और दूसरी बात ज्ञानमार्गकी है। भक्तिमार्गमें भगवान्‌के सिवाय गुणोंकी, भावोंकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती अर्थात् गुण, पदार्थ, क्रिया आदि सब भगवत्स्वरूप ही होते हैं। इसलिये भगवान्‌ने गुणोंको अपनेसे उत्पन्न बताया है। ज्ञानमार्गमें निर्गुण ब्रह्मकी उपासना होती है। निर्गुण ब्रह्म गुणोंसे अतीत है, निर्लेप है, निष्क्रिय है, निराकार है; अतः उसमें प्रकृति और प्रकृतिजन्य गुणोंकी किञ्चिन्मात्र भी सम्भावना नहीं है। इसलिये भगवान्‌ने गुणोंको प्रकृतिसे उत्पन्न बताया है। तात्पर्य यह हुआ कि गुणोंको चाहे भगवान्‌से उत्पन्न हुआ मानें अथवा प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ मानें, उनका हमारे साथ सम्बन्ध नहीं है।

'मनुष्य-जन्मका परम ध्येय तो उस अनुपमेय और सच्चे सुखको प्राप्त करना है, जिसके समान कोई दूसरा सुख है ही नहीं। वह सुख है—श्रीपरमात्माकी प्राप्ति।'—स्वामी श्रीरामसुखदासजी ('सच्चा सुख'—पुस्तकसे)

गौका विश्वरूप

[वेदोंमें]

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे इन्द्रः शिरो अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम् ॥ १ ॥ सोमो राजा मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः ॥ २ ॥ विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः कृत्तिका स्कन्धा धर्मो वहः ॥ ३ ॥ विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः ॥ ४ ॥ श्येनः क्रोडोऽन्तरिक्षं पाजस्यं बृहस्पतिः ककुद् बृहतीः कीकसाः ॥ ५ ॥ देवानां पत्नीः पृष्टय उपसदः पर्शवः ॥ ६ ॥ मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी महादेवो बाहू ॥ ७ ॥ इन्द्राणी भसद् वायुः पुच्छं पवमानो बालाः ॥ ८ ॥ ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणी बलमूरू ॥ ९ ॥

प्रजापति और परमेष्ठी इसके सींग, इन्द्र सिर, अग्नि ललाट और यम गलेकी संधि है ॥ १ ॥ नक्षत्रोंके राजा चन्द्रमा मस्तिष्क, द्युलोक ऊपरका जबड़ा और पृथिवी नीचेका जबड़ा है ॥ २ ॥ बिजली जीभ, मरुत् देवता दाँत, रेवती नक्षत्र गला, कृत्तिका कंधे और ग्रीष्म ऋतु कंधेकी हड्डी है ॥ ३ ॥ वायु देवता इसके समस्त अङ्ग हैं, इसका लोक स्वर्ग है और पृष्ठवंशकी हड्डी रुद्र है ॥ ४ ॥ श्येन पक्षी (बाज) इसकी छाती, अन्तरिक्ष इसका बल, बृहस्पति इसका कूबड़ और बृहती नामके छन्द इसकी छातीकी हड्डियाँ हैं ॥ ५ ॥ देवाङ्गनाएँ इसकी पीठ और उनकी परिचारिकाएँ पसलीकी हड्डियाँ हैं ॥ ६ ॥ मित्र और वरुण नामके देवता कंधे हैं, त्वष्टा और अर्यमा हाथ हैं और महादेव इसकी भुजाएँ हैं ॥ ७ ॥ इन्द्रपत्नी इसका पिछला भाग है, वायु देवता इसकी पूँछ और पवमान इसके रोयें हैं ॥ ८ ॥ ब्राह्मण और क्षत्रिय इसके नितम्ब और बल जाँघें हैं ॥ ९ ॥

धाता च सविता चाष्ठीवन्तौ जङ्घा गन्धर्वा अप्सरसः कुष्ठिका अदितिः शफाः ॥ १० ॥ चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत् ॥ ११ ॥ क्षुत् कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥ १२ ॥

धाता और सविता घुटनेकी हड्डियाँ हैं, गन्धर्व पिंडलियाँ, अप्सराएँ छोटी हड्डियाँ और देवमाता अदिति खुर हैं ॥ १० ॥ चित्त हृदय, बुद्धि यकृत् और व्रत ही पुरीतत् नामकी नाड़ी है ॥ ११ ॥ भूख ही पेट, देवी सरस्वती आँतें और पर्वत भीतरी भाग हैं ॥ १२ ॥

क्रोधो वृक्कौ मन्युराण्डौ प्रजा शेपः ॥ १३ ॥ नदी सूत्री वर्षस्य पतयः स्तना: स्तनयित्नुरूधः ॥ १४ ॥ विश्वव्यचाश्चर्मौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् ॥ १५ ॥ देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राणि यक्षा उदरम् ॥ १६ ॥ रक्षांसि लोहितमितरजना ऊबध्यम् ॥ १७ ॥ अभ्रं पीवो मज्जा निधनम् ॥ १८ ॥ अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना ॥ १९ ॥ इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः ॥ २० ॥

क्रोध गुर्दे, मन्यु (शोक) अण्डकोश और प्रजा जननेन्द्रिय है ॥ १३ ॥ नदी गर्भाशय, वर्षाके अधिकारी देव स्तन हैं तथा गड़गड़ाहट करनेवाले बादल ही दुग्धकोष हैं ॥ १४ ॥ विश्वव्यापिनी शक्ति चमड़ी, ओषधियाँ रोयें और नक्षत्र इसके रूप हैं ॥ १५ ॥ देवगण गुदा, मनुष्य आँतें एवं यक्ष पेट हैं ॥ १६ ॥ राक्षस रुधिर एवं दूसरे प्राणी आमाशय हैं ॥ १७ ॥ आकाश स्थूलता और मृत्यु मज्जा है ॥ १८ ॥ बैठनेके समय यह अग्निरूप है और उठते समय अश्विनी-कुमार ॥ १९ ॥ पूर्वकी ओर खड़े होते समय इन्द्र और दक्षिणकी ओर खड़े होनेपर यमराज है ॥ २० ॥

**प्रत्यङ् तिष्ठन् धातोदङ् तिष्ठन् सविता ॥ २१ ॥
तृणानि प्राप्तः सोमो राजा ॥ २२ ॥**

पश्चिमकी ओर खड़े होते समय धाता और उत्तरकी ओर खड़े होते समय यही सविता देवता है ॥ २१ ॥ घास चरते समय यही नक्षत्रोंका राजा चन्द्रमा है ॥ २२ ॥

मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः ॥ २३ ॥ युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम् ॥ २४ ॥ एतद् वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम् ॥ २५ ॥ उपैनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः पशवस्तिष्ठन्ति य एवं वेद ॥ २६ ॥

देखते समय यह मित्र देवता है और पीठ फेरते समय आनन्द है ॥ २३ ॥ हल अथवा गाड़ीमें जोतनेके समय यह (बैल) विश्वेदेव, जोत दिये जानेपर प्रजापति और जब खुला हुआ रहता है, उस समय यह सब कुछ बन जाता है ॥ २४ ॥ यही विश्वरूप अथवा सर्वरूप है और यही गोरूप भी

है॥ २५॥ जिसको इस विश्वरूपका यथार्थ ज्ञान होता है, उसके पास विविध आकारके अनेक पशु रहते हैं॥ २६॥ (अथर्व० ९।४।१)

इस सूक्तमें गौका तथा बैलका विश्वरूप बताया गया है। भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने अपने विश्वरूपका वर्णन किया है, गौके भी उसी प्रकारके विश्वरूपका इस सूक्तमें वर्णन है। संस्कृतके प्रसिद्ध पाश्चात्त्य विद्वान् ग्रिफिथ महोदय कहते हैं कि इस सूक्तमें आदर्श बैल और गायकी प्रशंसा की गयी है।

इस सूक्तपर कई दृष्टियोंसे विचार किया जा सकता है, परंतु यहाँ केवल एक-दो मुख्य बातें बतलानी हैं। सम्पूर्ण सूक्तके सभी अंशोंपर विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस सूक्तके विचारणीय अंश नीचे दिये जाते हैं—

(१) ब्राह्मण और क्षत्रिय विश्वरूपिणी गौके नितम्ब हैं। (मन्त्र ९)

(२) गन्धर्व पिंडलियाँ और अप्सराएँ छोटी हड्डियाँ हैं। (मन्त्र १०)

(३) देवता इसकी गुदा हैं, मनुष्य आँतें और अन्य प्राणी आमाशय हैं। (मन्त्र १६)

(४) राक्षस रक्त एवं इतर मनुष्य पेट हैं। (मन्त्र १७)

उपर्युक्त मन्त्रोंमें यह भाव दिखलाया गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, इतर लोग अर्थात् वैश्य, शूद्र, निषाद, गन्धर्व, देवता, अप्सराएँ, मनुष्यमात्र, राक्षस एवं अन्य सब प्राणी गो-रूप ही हैं। सम्पूर्ण जनता हृदयसे समझे कि हम सब मनुष्य गो-माताके ही अङ्ग हैं—इसीलिये इन मन्त्रोंकी अवतारणा की गयी है। इस प्रकार हमलोग गोमाताके शरीरके साथ अपनी एकरूपता देखना सीखें। गौके शरीरको कष्ट होनेपर वह कष्ट हमींको होगा—यह भाव मनमें धारण करें। यदि कोई मनुष्य गौको कष्ट देता है या उसे काटता है या और तरहसे दुःख देता है तो वह केवल गौको ही दुःख देता है तथा गौके दुखी रहनेपर भी हम सब सुखी रह सकते हैं—यह हीन भाव मनसे हटा दें। गौका हमारे साथ अवयवी और अवयवका सम्बन्ध है। हम गौके ही अङ्ग हैं, इसलिये जो दुःख गौको मिलता है, वह हमींको मिलता है—ऐसा मानना चाहिये और इसी भावनासे गौका पालन और रक्षा करना चाहिये। हमारे शब्दोंमें स्वयं अपने ऊपर दुःख आनेपर जिस लगनके साथ उसका प्रतिकार किया जाता है, उसी तीव्रताके साथ गौके कष्टोंको दूर करनेकी चेष्टा होनी चाहिये।

गौ एक निरा दूध देनेवाला पशु ही नहीं है, प्रत्युत वह अपने कुटुम्बका हकदार है, या यों कहिये कि मालिक है और हम उसके परिवारके लोग हैं—यह भाव सदा मनमें जीवित और जाग्रत् रहना चाहिये।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद, राक्षस आदि सभी जातिके लोगोंमें यह विचार जाग्रत् रहना चाहिये। ऐसा होनेसे सम्पूर्ण जगतीतलपर गोमाताकी पूजा होने लगेगी।

यह सम्पूर्ण जगत् ही गोरूप अर्थात् गायका ही रूप है, इसलिये गौके साथ किसी एक पदार्थकी तुलना हो ही नहीं सकती। अन्य सभी पदार्थोंकी विविध उपमाएँ दी जा सकती हैं, केवल गौ ही ऐसा प्राणी है, जो अनुपम है, क्योंकि वह प्राणिमात्रकी निरुपम माता है, मानव-वंशोंका पालन करनेवाली है और मानवमात्र उसके अवयव हैं। पाठक यदि विचार करेंगे और गौके उपकारोंका मनन करेंगे तो वेदका यह कथन ठीक तरहसे उनकी समझमें आ सकता है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि उपर्युक्त वर्णनसे वेदने किस बातकी शिक्षा दी है। इस प्रश्नके उत्तरमें निवेदन है कि वेदने इस सूक्तके द्वारा अहिंसाका उत्तमोत्तम उपदेश दिया है। मनुष्य तो क्या, कोई भी प्राणी अपने-आपकी हिंसा कदापि न करेगा। सिंह या अन्य हिंसक जन्तु दूसरे जीवोंको मारकर खा जाते हैं। राक्षस भी मनुष्यादि प्राणियोंको खा जाते हैं। परंतु दूसरेके मांसपर निर्वाह करनेवाले ये क्रूर प्राणी अत्यधिक भूख लगनेपर भी अपनी ही देहके अवयवोंको कभी काटकर नहीं खाते।

अतः इस स्वाभाविक प्रवृत्तिको लेकर ही वेद मनुष्योंको इस सूक्तके द्वारा गाय और बैलके मांससे पूर्णतया निवृत्त करना चाहता है। यह बात उपर्युक्त वर्णनसे स्पष्ट हो जाती है।

जब सम्पूर्ण हृदयसे मनुष्य अपने-आपको गौके शरीरके अवयव मानने लगेंगे, तब वे लोग गौ या बैलका मांस किस तरह खा सकेंगे, क्योंकि कोई भी जीव अपने शरीरका मांस नहीं खाता, औरोंकी तो बात ही क्या, निरे आमिषभोजी अथवा नरमांसभोजी मनुष्य भी अपने शरीरका मांस नहीं खाते।

इसलिये जो मनुष्य अपने-आपको गौके शरीरका अवयव मानेगा, वह गोमांस-भक्षणसे पूर्णतया निवृत्त होगा ही।

देखिये, कितनी प्रबल युक्तिसे वेदने लोगोंको—मांसभोजी राक्षस-श्रेणीके लोगोंको भी निरामिषभोजी बनानेका यत्न किया है। यह इतनी प्रबल युक्ति है कि यदि इस प्रकारका विचार मनमें सदाके लिये स्थिर हो जाय तो कभी कोई गोमांस खाये ही नहीं। इतनी प्रबल युक्ति देनेपर भी कई पाश्चात्त्य विद्वान् यह मानते हैं कि वैदिक कालमें गोमांस खानेकी प्रथा थी और बैलका भी मांस खाया जाता था। उन लोगोंसे हमारी प्रार्थना है कि वे इस प्रबल युक्तिका अधिक विचारपूर्वक मनन करें और इसके बाद अपना मत स्थिर करें।

गौ मुझसे भिन्न नहीं, मैं उसके शरीरका एक भाग हूँ, इसलिये मुझे जिस प्रकार अपनी रक्षा करनी चाहिये, उसी प्रकार गौकी भी रक्षा अवश्य करनी चाहिये—यह कितना उच्चतम उपदेश है! पाठक इस उपदेशका महत्त्व समझें।

दुराचारी मनुष्य भी जिस समय किसी स्त्रीको 'मा' कहता है, उस समय उसकी दृष्टिमें तत्काल पवित्रता आ जाती है। किसीको माता कहनेका तात्पर्य ही यह है कि उसे पवित्रताकी दृष्टिसे देखा जाय।

गौको माता कहनेका अर्थ यही है कि उसे हम पवित्र एवं पूज्य-दृष्टिसे देखें। गौ हमारी परम पूजनीय, वन्दनीय एवं पालनीय माता है—यह भाव हमें हर समय जाग्रत् रखना चाहिये। पाठक इस सूक्तका मनन इसी दृष्टिसे करें। इन्द्रादि देवगण जीवित और जाग्रत् गोमाताके देहमें हैं। जहाँ इन्द्रादि देव रहते हैं, वहीं स्वर्ग है अर्थात् गौ ही स्वर्गलोक है।—(क्रमशः)
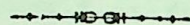
व्रत-परिचय

[गताङ्क पृ० सं० ७६२से आगे]

शुक्लपक्ष

(१) गुड-लवणदानव्रत (भविष्योत्तर)—माघ शुक्ल तृतीयाको गुड़ और लवणका दान करे तो गुड़से देवी और लवणसे प्रभु प्रसन्न होते हैं।

(२) वरदाचतुर्थी (निर्णयामृत)—माघ शुक्ल चतुर्थीको कुन्दके पुष्पोंसे शिवजीका पूजन करनेसे श्रीकी प्राप्ति होती है।

(३) गौरीव्रत (ब्रह्मपुराण)—माघ शुक्ल चतुर्थीको गन्ध, पुष्प, धूप-दीप और नैवेद्य आदिसे उमाका पूजन करके गुड़, अदरख, लवण, पालक और खीर—इनसे बलि देकर ब्राह्मणोंको भोजन कराये।

(४) कुण्डचतुर्थी (देवीभागवत)—माघ शुक्ल चतुर्थीको उपवास करके देवीका पूजन करे। अनेक प्रकारके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, फल, पत्र, धान्य, बीज और सब प्रकारकी नैवेद्य-सामग्री अर्पण करे तथा शूर्प या मिट्टीके पात्रमें उक्त नैवेद्य-सामग्री भरकर ब्राह्मणको दे तो संतति और सौभाग्य दोनों प्राप्त होते हैं।

(५) ढुण्ढिपूजा (त्रिस्थलीसेतु)—माघ शुक्ल चतुर्थीको नक्तव्रतमें [illegible] सफेद तिल और चीनीके मोदक अर्पण करे, तिलोंकी आहुति दे और रात्रिमें एकभुक्त करके जागरण करे तो उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।

(६) शान्तिचतुर्थी (भविष्यपुराण)—माघ शुक्ल चतुर्थीको गणेशजीका पूजन करके घीमें सने हुए गुड़के अपूप (पूआ) और लवणके पदार्थ अर्पण करे और गुरुदेवकी पूजा करके उनको गुड़, लवण और घी दे तो इस व्रतसे सब प्रकारकी स्थिर शान्ति प्राप्त होती है।

(७) अङ्गारकचतुर्थी (मत्स्यपुराण)—यदि माघ शुक्ल चतुर्थीको मंगलवार हो तो उस दिन प्रातःस्नानके पहले शरीरमें मिट्टी लगाकर शुद्ध स्नान करे। लाल धोती पहने। पद्मराग-मणि धारण करे और उत्तराभिमुख बैठकर **'अग्निर्मूर्धा०'** इस मन्त्रका जप करे। जिसके यज्ञोपवीत न हो, वह **'अङ्गारकाय भौमाय नमः'** का जप करे। फिर भूमिको गोबरसे लीपकर उसपर लाल चन्दनका अष्टदल बनाये तथा उसकी पूर्वादि चारों दिशाओंमें भक्ष्य-भोजन और चावलोंसे भरे हुए चार करवे रखे तथा उनका गन्धाक्षतादिसे पूजन करके [illegible] गौ और लाल रंगके अतीव सौम्य धुरंधर

बैल दे और साथमें शय्या दे तो सहस्रगुणा फल होता है।

(८) गणेशव्रत (भविष्यपुराण)—माघ शुक्ल पूर्वविद्धा चतुर्थीको प्रातःस्नानादि करनेके पश्चात् **'ममाखिलाभिलषितकार्यसिद्धिकामनया गणेशव्रतं करिष्ये'** इस मन्त्रसे संकल्प करके वेदीपर लाल वस्त्र बिछाये। लाल अक्षतोंका अष्टदल बनाकर उसपर सिंदूरचर्चित गणेशजी स्थापित करे। स्वयं लाल धोती पहनकर लाल वर्णके फल-पुष्पादिसे षोडशोपचार पूजन करे। नैवेद्यमें (भिगोकर छीली हुई) हल्दी, गुड़, शक्कर और घी—इनको मिलाकर भोग लगाये और नक्तव्रत (रात्रिमें एक बार भोजन) करे तो सम्पूर्ण अभीष्ट सिद्ध होते हैं।

(९) सुखचतुर्थी (भविष्यपुराण)—माघ शुक्ल चतुर्थीको यदि मङ्गलवार हो तो लाल वर्णके गन्ध, अक्षत और पुष्प, नैवेद्यसे गणेशजीका पूजन करके उपवास करे। इस प्रकार चतुर्थ-चतुर्थ (चौथी, चौथी) चतुर्थी (माघ, वैशाख, भाद्रपद और पौष) का एक वर्ष व्रत करे तो सब प्रकारके सुख प्राप्त होते हैं। प्रत्येक चतुर्थीको भौमवार होना आवश्यक है।

(१०) यमव्रत (हेमाद्रि)—माघ शुक्ल चतुर्थीको भरणी नक्षत्र और शनिवार हो तो उस दिन यमका पूजन और तन्निमित्त व्रत करनेसे यमके भयकी निवृत्ति और स्वर्गीय सुखकी प्रवृत्ति होती है।

(११) श्रीपञ्चमी-वसन्तपञ्चमी (पुराणसमुच्चय)—माघ शुक्ल पूर्वविद्धा पञ्चमीको उत्तम वेदीपर वस्त्र बिछाकर अक्षतोंका अष्टदल कमल बनाये। उसके अग्रभागमें गणेशजी और पृष्ठभागमें 'वसन्त'—जौ, गेहूँकी बालका पुञ्ज (जो जलपूर्ण कलशमें डंठलसहित रखकर बनाया जाता है) स्थापित करके सर्वप्रथम गणेशजीका पूजन करे और पीछे उक्त पुञ्जमें रति और कामदेवका पूजन करे। और उनपर अबीर आदिके पुष्पोपम छींटे लगाकर वसन्तसदृश बनाये तत्पश्चात् **'शुभा रतिः प्रकर्तव्या वसन्तोज्ज्वलभूषणा। नृत्यमाना शुभा देवी समस्ताभरणैर्युता॥ वीणावादनशीला च मदकर्पूरचर्चिता।'** से 'रति' का और **'कामदेवस्तु कर्तव्यो रूपेणाप्रतिमो भुवि। अष्टबाहुः स कर्तव्यः शङ्खपद्मविभूषणः॥ चापबाणकरश्चैव मदादञ्चितलोचनः। रतिः प्रीतिस्तथा शक्तिर्मदशक्तिस्तथोज्ज्वला॥ चत्वारस्तस्य कर्तव्याः पत्न्यो रूपमनोहराः। चत्वारश्च करास्तस्य कार्या भार्यास्तनोपगाः॥ केतुश्च मकरः कार्यः पञ्चबाणमुखो महान्।'** से कामदेवका ध्यान करके विविध प्रकारके फल, पुष्प और पत्रादि समर्पण करे तो गार्हस्थ्यजीवन सुखमय होकर प्रत्येक कार्यमें उत्साह प्राप्त होता है।

(१२) मन्दारषष्ठी (भविष्योत्तर)—यह व्रत तीन दिनमें पूर्ण होता है। एतन्निमित्त माघ शुक्ल पञ्चमीको सम्पूर्ण कामना त्याग करके जितेन्द्रिय होकर थोड़ा-सा भोजन करके एकभुक्त व्रत करे। षष्ठीको प्रातःस्नानादि नित्यकर्म करनेके बाद ब्राह्मणसे आज्ञा लेकर दिनभर व्रत रखे और रात्रि होनेपर केवल मन्दारके पुष्पको भक्षण करके उपवास करे और सप्तमीके प्रभातमें पुनः स्नान करके ब्राह्मणोंका पूजन करे और मन्दार (आक) के आठ पुष्प लाकर ताँबेके पात्रमें काले तिलोंका अष्टदल कमल बनाये। उसकी प्रत्येक कर्णिका (कली या कोण) पर एक-एक पुष्प रखे और बीचमें सुवर्णनिर्मित सूर्यनारायणकी मूर्तिका स्थापन करके—**'भास्कराय नमः'** से पूर्वके, **'सूर्याय नमः'** से अग्निकोणके, **'सूर्याय नमः'** से दक्षिणके, **'यज्ञेशाय'** से नैर्ऋतकोणके, **'वसुधाम्ने'** से पश्चिमके, **'चण्डभानवे'** से वायव्यकोणके, **'कृष्णाय'** से उत्तरके और **'श्रीकृष्णाय'** से ईशानकोणके अर्क-पुष्पका स्थापन और पूजन करे और पद्मके मध्यमें स्थापित की हुई सुवर्णमूर्तिका **'सूर्याय नमः'** इस मन्त्रसे पूजन करे और तैल तथा लवणवर्जित भोजन करे। इस प्रकार प्रतिज्ञापूर्वक महीने-के-महीने प्रत्येक सप्तमीको वर्षपर्यन्त व्रत करके—समाप्तिके दिन कलशपर रक्त सूर्यमूर्ति स्थापन करके पूजन करे और **'नमो मन्दारनाथाय मन्दारभवनाय च। त्वं रवे तारयस्वास्मानस्मात् संसारसागरात्॥'** से प्रार्थना करके सूर्यमूर्ति सुपठित ब्राह्मणको दे तो उसके सब पाप दूर हो जाते हैं और वह स्वर्गमें जाता है।

(१३) दारिद्र्यहरषष्ठी (स्कन्दपुराण)—माघ शुक्ल षष्ठीसे आरम्भ करके प्रत्येक षष्ठीको एकभुक्त, नक्त, अयाचित या उपवास करके ब्राह्मणको भोजन कराये और कटोरेमें दूध, घी, भात और शक्कर भरकर (प्रतिषष्ठीको) वर्षपर्यन्त दान करे तो उसके कुलसे दरिद्र दूर हो जाता है।

(१४) [illegible] ([illegible])—यह माघ शुक्ल

सप्तमीको होती है। प्राणिमात्रकी जीवनशक्तिको जीवित रखनेवाले प्रत्यक्ष ईश्वर सूर्यनारायणने मन्वन्तरके आदिमें इसी दिन अपना प्रकाश प्रकाशित किया था। अतः यह जयन्ती भी है। इस दिन सूर्यकी उपासनाके कई कृत्य कई प्रयोजनों और प्रकारोंसे किये जाते हैं। इस कारण इसके अर्क-अचला-रथ-सूर्य और भानुसप्तमी आदि कई नाम हैं। यह अरुणोदयव्यापिनी ली जाती है। यदि दो दिन अरुणोदयी हो तो पहली लेना चाहिये। स्नानके विषयमें यह स्मरण रहे कि जो माघ-स्नान करते हों, वे इसी दिन अरुणोदय (पूर्व दिशाकी प्रातःकालीन लालिमा) होनेपर और भानुसप्तमीनिमित्त स्नान करनेवालोंको सूर्योदयके बाद स्नान करना चाहिये।…स्नान करनेके पहले आकके ७ पत्तों और बेरके ७ पत्तोंको कसुम्भाकी बत्तीवाले तिल-तैलपूर्ण दीपकमें रखकर उसको सिरपर रखे और सूर्यका ध्यान करके गन्नेसे जलको हिलाकर दीपकको प्रवाहमें बहा दे। दिवोदासके मतानुसार दीपकके बदले आकके सात पत्ते सिरपर रखकर ईखसे जलको हिलाये और **'नमस्ते रुद्ररूपाय रसानां पतये नमः। वरुणाय नमस्तेऽस्तु'** पढ़कर पत्तोंको बहा दे और **'यद् यज्जन्मकृतं पापं यच्च जन्मान्तरार्जितम्। मनोवाक्कायजं यच्च ज्ञाताज्ञाते च ये पुनः॥ इति सप्तविधं पापं स्नानान्ते सप्तसप्तिके। सप्तव्याधिसमाकीर्णं हर भास्करि सप्तमि॥'** इनका जप करके केशव और सूर्यको देखकर पादोदक (गङ्गाजल अथवा चरणामृत) को जलमें डालकर स्नान करे तो क्षणभरमें पाप दूर हो जाते हैं। इसके बाद अर्घमें जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, दूर्वा, सात अर्कपत्र और सात बदरीपत्र रखकर **'सप्तसप्तिवह प्रीतः सप्तलोकप्रदीपन। सप्तम्या सहितो देव गृहाणार्घ्यं दिवाकर॥'** से सूर्यको और **'जननी सर्वलोकानां सप्तमी सप्तसप्तिके। सप्तव्याहृतिके देवि नमस्ते सूर्यमण्डले॥** से सप्तमीको अर्घ्य दे।…इसी दिन तालक-दानके निमित्त नित्य-नियमसे निवृत्त होकर चन्दनसे अष्टदल लिखे। पूर्वादिक्रमसे उसकी आठों कर्णिका (कोणों) पर शिव, शिवा, रवि, भानु, वैवस्वत, भास्कर, सहस्रकिरण और सर्वात्मा—इनका यथाक्रम स्थापन और पूजन करके—ताम्रादिके पात्रमें काञ्चन—कर्णाभरण (कुण्डल), घी, गुड़ और तिल रखकर लाल वस्त्रसे ढाँके और गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करके **'आदित्यस्य प्रसादेन प्रातःस्नानफलेन च। दुष्टदुर्भाग्यदुःखघ्नं मया दत्तं तु तालकम्॥'** से ब्राह्मणको दे। और 'भानुसप्तमी' के निमित्त…प्रातःस्नानादिसे निश्चिन्त होकर समीपमें सूर्यमन्दिर हो तो उसके सम्मुख बैठे अथवा सुवर्णादिकी छोटी मूर्ति हो तो उसे अष्टदल कमलके बीचमें स्थापित कर **'मम अखिलकामनासिद्ध्यर्थे सूर्यनारायणप्रीतये च सूर्यपूजनं करिष्ये।'** से संकल्प करके—**'ॐ सूर्याय नमः'** इस नाममन्त्रसे अथवा पुरुषसूक्तादिसे आवाहनादि षोडशोपचार पूजन करे। ऋतुकालके पत्र, पुष्प, फल, खीर, मालपुआ, दाल-भात या दध्योदनादिका नैवेद्य निवेदन करे और भगवान्‌को सर्वाङ्गपूर्ण रथमें विराजमान करके गायन-वादन और स्वजन-परिजनादिको साथ लेकर नगर-भ्रमण करवाकर यथास्थान स्थापित करे और ब्राह्मणोंको खीर आदिका भोजन करवाकर दिनास्तसे पहले स्वयं एक बार भोजन करे। उस दिन तैल और लवण न खाय। इस प्रकार प्रतिवर्ष करे तो सूर्योपरागादिमें कियेके समान अक्षय पुण्य होता है।

(१५) (महती सप्तमी) (मत्स्यपुराण)—इसी माघ शुक्ल सप्तमीको रथारूढ सूर्यनारायणका पूजन करके उपवास करे तो सात जन्मके पाप दूर होते हैं। यही रथसप्तमी भी है।

(१६) रथाङ्गसप्तमी (हेमाद्रि)—इसी सप्तमीको उपवास करके सूर्यका पूजन करे, उनको सुवर्णके रथमें स्थापित करके और प्रत्येक शुक्ल सप्तमीको पूजन करके वर्षके अन्तमें ब्राह्मणको दे।

(१७) पुत्रसप्तमी (आदित्यपुराण)—माघ शुक्ल षष्ठीको उपवास करके सप्तमीके प्रातःकालमें स्नान करे और सूर्यनारायणका पूजन एवं तन्निमित्त हवन करके दूध, दही, भात या खीर आदिका ब्राह्मणोंको भोजन कराये। इसी प्रकार कृष्णपक्षमें उपवास करके लाल कमलके पुष्पादिसे सूर्यका पूजन करे तो वर्षपर्यन्त करनेसे उत्तम पुत्रकी उपलब्धि होती है।

(१८) सप्तसप्तमी (सूर्यारुण-हेमाद्रि)—जिस प्रकार योगविशेषसे वारुणी, महावारुणी, महामहावारुणी या माघी, महामाघी, महामहामाघी अथवा जया, विजया, महाजया आदि होती हैं, उसी प्रकार वारादिके योगविशेषसे माघ शुक्ल सप्तमीके भी कई भेद होते हैं। यथा—(१) जया, (२) विजया,

(३) महाजया, (४) जयन्ती, (५) अपराजिता, (६) नन्दा और (७) भद्रा-···अथवा (१) अर्कसम्पुटक, (२) मरीचि, (३) निम्बपत्र, (४) सुफला, (५) अनोदना, (६) विजया और (७) कामिका—ये सब रविवारको पञ्चतारक (रो० श्ले० म० ह०) अथवा पुन्नाम (मृ० पु० पु० ह० अनु०) नक्षत्र होनेसे सिद्ध होती हैं। इनमें व्रत-उपवास, पूजा-पाठ, दान-पुण्य, हवन और ब्राह्मण-भोजनादि करने-करानेसे अनन्त फल होता है। विशेषकर (१) अर्कसम्पुटकसे धनवृद्धि, (२) मरीचिसे प्रिय-पुत्रादिका संगम, (३) निम्बपत्रसे रोगनाश, (४) सुफलासे पुत्र-पौत्र-दौहित्रादिकी अपूर्व अभिवृद्धि, (५) अनोदनासे धन-धान्य, सुवर्ण, चाँदी और आरोग्यलाभ, (६) विजयासे शत्रुनाश और (७) कामिकासे सब प्रकारकी अभीष्टसिद्धि होती है। इनके निमित्त माघ शुक्ल सप्तमीको प्रातःस्नानादिके पश्चात् आकाशस्थ सूर्यका अथवा सुवर्णादिनिर्मित सूर्यमूर्तिका यथालब्ध उपचारोंसे पूजन करके खीर, मालपुआ, दाल-भात, दूध-दही अथवा दध्योदनादिका नैवेद्य अर्पण करे और पीछे ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भोजन करे तो यथोक्त फल मिलता है।

(१९) भीमाष्टमी (धवलनिबन्ध)—माघ शुक्ल अष्टमीको जौ, तिल, गन्ध, पुष्प, गङ्गाजल और दर्भ आदिसे भीष्मजीका श्राद्ध अथवा तर्पण करे तो अभीष्टसिद्धि होती है। यदि तर्पणमात्र भी न किया जाय तो पाप होता है। श्राद्धके अवसरमें भीष्मका पूजन भी किया जाता है, अतः उसमें **'वसूनामवताराय शान्तनोरात्मजाय च। अर्घ्यं ददामि भीष्माय आबाल्यब्रह्मचारिणे ॥'** इस मन्त्रसे अर्घ्य दे।

(२०) शुक्लैकादशी (पद्मपुराण)—माघ शुक्ल एकादशीका नाम 'जया' है। इसका व्रत करनेसे पिशाचत्व मिट जाता है। एक बार इन्द्रकी सभामें युवक माल्यवान् और युवती पुष्पवतीके लज्जाहीन बर्तावसे रुष्ट होकर इन्द्रने उनको पिशाच बना दिया था, उससे उनको बड़ा दुःख हुआ। अन्तमें उन दोनोंने माघ शुक्ल एकादशीका उपवास किया तब अपनी पूर्वावस्थाको प्राप्त हुए।

(२१) तिलद्वादशी (ब्रह्मपुराण)—यह व्रत षट्तिलाके समान है। इसके लिये माघ शुक्ल द्वादशीको तिलोंके जलसे स्नान करे। तिलोंसे विष्णुका पूजन करे। तिलोंके तेलका दीपक जलाये। तिलोंका नैवेद्य बनाये। तिलोंका हवन करे और तिलोंका दान करके तिलोंका ही भोजन करे तो इस व्रतके प्रभावसे स्वाभाविक, आगन्तुक, कायकान्तर और सांसर्गिक सम्पूर्ण व्याधि दूर होती है और सुख मिलता है।

(२२) भीमद्वादशी (हेमाद्रि)—यह भी इसी माघ शुक्ल द्वादशीको होती है। इसमें व्रतको ब्रह्मार्पण करके ब्राह्मणोंको भोजन कराये और फिर पारण करे। शेष विधि एकादशीके समान करे।

(२३) दिनत्रयव्रत (पद्मपुराण)—माघस्नान ३० दिनमें पूर्ण होता है, परंतु इतने समयकी सामर्थ्य अथवा अनुकूलता न हो तो माघ शुक्ल त्रयोदशी-चतुर्दशी और पूर्णिमाके अरुणोदयमें स्नानादि करके व्रत करे और यथानियम दान-पुण्य करे तो सम्पूर्ण माघस्नानका फल मिलता है।

(२४) माघी पूर्णिमा (दानचन्द्रोदय)—माघ शुक्ल पूर्णिमाको प्रातःस्नानादिके पीछे विष्णुका पूजन करे, पितरोंका श्राद्ध करे, असमर्थोंको भोजन, वस्त्र और आश्रय दे, तिल, कम्बल, कपास, गुड़, घी, मोदक, उपानह, फल, अन्न और सुवर्णादिका दान करे और व्रत या उपवास करके ब्राह्मणोंको भोजन कराये और कथा सुने।

(२५) महामाघी (कृत्यचन्द्रिका)—माघ शुक्ल पूर्णिमाको मेषका शनि, सिंहके गुरु-चन्द्र और श्रवणका सूर्य हो तो इनके सहयोगसे महामाघी सम्पन्न होती है। इसमें स्नान-दानादि जो भी किये जायँ, उनका अमिट फल होता है।—(क्रमशः) —पं० श्रीहनूमान्जी शर्मा

'जिनके पास पैसा नहीं है, परंतु बुद्धि-विवेक, सत्य, श्रद्धा, चरित्र और प्रभु-भक्ति है, वे परम धनी हैं और जो पैसेवाले हैं या रात-दिन सिर्फ पैसा बटोरनेके काममें ही लगे रहते हैं, वे तो सदा ही निर्धन हैं।'

—भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ('कल्याण-कुञ्ज' भाग—१-पुस्तकसे)

अमृतफल आमलक—जो लोक-परलोक दोनोंके लिये कल्याणकारी है

(श्रीदिनेशचन्द्रजी उपाध्याय, एम्० एस्०-सी०, एल्जी०)

पौराणिक मान्यताके अनुसार अमृतफल (आँवला) की गणना सृष्टिके पवित्र एवं प्राचीनतम देव-वृक्षोंमें की गयी है। स्कन्दपुराणके कार्तिक-माहात्म्यमें आँवलेके वृक्षके आविर्भावके विषयमें यह कथा आयी है कि 'आदि-सृष्टिकी उत्पत्तिके समय ब्रह्माजी ध्यानावस्थामें निमग्न थे। उस समय उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु टपक पड़े, जिससे आँवलेके वृक्षकी उत्पत्ति हुई। अनन्तर देवताओंका प्रादुर्भाव हुआ। देवगण उस वृक्षको देखकर चकित हो गये, उसी समय आकाशवाणी हुई कि 'देवताओ! सभी वृक्षोंमें श्रेष्ठ श्रीहरिको अतिप्रिय सर्वपापहर्ता यह आँवलेका वृक्ष है।' ऐसी ही एक अन्य कथामें कहा गया है कि 'देवी पार्वती और लक्ष्मी एक बार तीर्थयात्राके लिये निकलीं। तब पार्वतीजीने लक्ष्मीजीसे कहा कि 'देवि! आज मैं किसी स्वकल्पित नवीन द्रव्यसे श्रीहरिकी पूजा करना चाहती हूँ।' लक्ष्मीजीने उत्तर दिया कि 'मेरी भी इच्छा त्रिलोचन महादेवकी किसी नवीन द्रव्यसे पूजा करनेकी है।' भक्तिविभोर दोनों देवियोंके नेत्रोंसे अमल अश्रुजल भूमिपर गिर पड़े, उसीसे माघ मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीको अमल अर्थात् परम पवित्र आँवलेकी उत्पत्ति हुई, जिससे पूजित होकर श्रीहरि-हर अत्यन्त प्रसन्न हुए।'

आँवलेके माहात्म्यसे सम्बन्धित एक अन्य कथा पद्मपुराण, सृष्टिखण्डके ६२ वें अध्यायमें भी मिलती है, जिसमें आँवलेके सेवनमात्रसे वैकुण्ठकी प्राप्ति बतलायी गयी है। कथाके अनुसार प्राचीन समयमें किसी स्थानमें दिन-रात पापरत तथा अति निन्दनीय कर्मोंको करनेवाला एक पुल्कस (चाण्डाल) रहता था, वह एक दिन आखेटके लिये एक वनमें गया और वहाँ इधर-उधर घूमते-घूमते वह क्षुधा-पिपासासे ग्रस्त हो गया, तब इधर-उधर देखनेपर उसे वहाँ पके फलोंसे परिपूर्ण आँवलेका एक वृक्ष दिखलायी पड़ा, जिसके पके हुए तथा रसभरे आँवलोंको खानेसे उसकी भूख-प्यास मिट गयी। लालचवश वह वृक्षपर चढ़ता गया, जिससे आँवलेसे लदी डाली टूट गयी और पृथिवीपर गिर पड़ी, डालीके साथ पुल्कस भी गिर पड़ा और तत्क्षण उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्युके बाद उसके पाप-कर्मोंसे परिचित जंगलके प्रेतोंने उसके शरीरपर अधिकार जमाना चाहा, इधर यमदूतोंने भी पुल्कसके शरीरपर अपना अधिकार जमाना चाहा, किंतु कोई भी पुल्कसका स्पर्श नहीं कर पाता था, सबकी आँखें चौंधिया जाती थीं। भयभीत प्रेतों तथा यमदूतोंने वहाँके मुनियोंसे इसका रहस्य पूछा तो मुनिगणोंने कहा कि गङ्गा और तुलसीकी तरह आँवलेमें भी दिव्य पूतकारक शक्ति है और यह भगवान् श्रीहरिको अतिप्रिय है। अज्ञानमें ही इसके सेवनसे पुल्कसके सब पाप धुल गये हैं और अब उसे वैकुण्ठकी प्राप्ति होगी—

'धात्रीभक्षणमात्रेण पापात् पूतो व्रजेद्दिवम्॥'

(पद्म०, सृष्टि० ६२। ४७)

उन प्रेतोंद्वारा अपनी मुक्तिके लिये भी अनुरोध करनेपर मुनियोंने उन्हें भी आँवले दिखलाये और खिलाये, जिससे पुल्कसके साथ ही प्रेतोंका समुदाय भी दिव्य विमानसे वैकुण्ठको चला गया।

यह है आँवलेका दिव्य प्रभाव। आज भी माघ मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीको व्रत तथा आँवलेकी पूजा करने और कार्तिक मासमें शुक्ल पक्षकी नवमी (अक्षयनवमी) एवं चतुर्दशी (वैकुण्ठचतुर्दशी) को आँवलेके वृक्षके नीचे भोजन करनेकी परम्परा है।

आँवलेका आध्यात्मिक महत्त्व तो है ही, साथ ही जरा और व्याधिको दूर करनेवाला होनेसे इसका औषधिक महत्त्व भी बहुत अधिक है। कहते हैं कि च्यवनऋषिने आँवलेके प्रयोगसे ही पुनः यौवन प्राप्त किया था। औषधीय गुणोंके कारण ही इसे अमृतफल, धात्री, वयःस्था, शिवा, अमृता तथा आमलक या आमलकी नामसे व्यवहृत किया गया है। आयुर्वेदके आमलकी-रसायन-योगका उल्लेख तन्त्रसार और सिद्धयोग-संग्रहमें मिलता है, जो अष्टाङ्गहृदय और चरकसंहितापर आधारित है। आमलकी-रसायनके सेवनसे शरीरमें युवाशक्ति, धारणाशक्ति, बुद्धिमत्ता और ओजमें वृद्धि होती है।

आयुर्वेदमें आँवलेसे निर्मित विविध योगोंद्वारा विभिन्न रोगोंसे मुक्ति पाने-हेतु वर्णन प्रचुर मात्रामें मिलता है। जैसे—भैषज्य-रत्नावलीमें आमलकी-कषाय, आमलकी-क्वाथ, आमलकी-रसायन, आमलक्यवलेह, आमलक्यादिक्वाथ, धात्रीघृतम् आदि आँवलासे निर्मित ओषधियोंका वर्णन मिलता है। जिनका गुल्मरोग, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डुरोग, मस्तिष्क-विकार आदि रोगोंके उपचारमें उपयोग होता है। इसके अतिरिक्त त्रिफलाके रूपमें इसके उपयोगकी विशेष महत्ता है।

आँवला अम्लगुणके कारण वायुको, मधुर तथा शीतगुणके कारण पित्तको तथा कषायगुणके कारण कफको शान्त करता है अर्थात् त्रिदोषनाशक है। रक्तशोधक, रुचिकारक, ग्राही तथा मूत्रल होनेसे आँवला वातरक्त, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, बवासीर, अजीर्ण, अतिसार, प्रमेह, श्वास, कब्ज, पाण्डु और क्षय आदि रोगोंका शमन करता है। च्यवनप्राश-जैसी ओज, बल एवं बुद्धिवर्धक ओषधिमें मुख्यरूपसे आँवलेका ही अधिक मात्रामें प्रयोग होता है। आँवलेमें जीवनीशक्ति (विशेष रूपसे विटामिन-सी) सर्वाधिक मात्रामें होती है। अतः इसका यथोचित सेवन बड़ा ही गुणकारक है।

पुराणोंमें इसे 'आमलक' या 'धात्री' नामसे कहा गया है। इसके दर्शन एवं आरोपणका विशेष माहात्म्य बताया गया है। पद्मपुराणमें कहा गया है कि आँवला-वृक्ष लगानेसे जन्म-बन्धनसे मुक्ति होती है। इसके फलके भक्षण करनेसे सभी पापोंकी निवृत्ति होती है और यह परम पवित्र, शुभ तथा भगवान् वासुदेवको अत्यन्त प्रिय है। इसके भक्षण करनेसे दीर्घायु, पान करनेसे धर्मसंचय अलक्ष्मीका विनाश तथा स्नान करनेसे सभी ऐश्वर्योंकी प्राप्ति होती है[1]। धात्रीके दर्शन, स्पर्श अथवा नामोच्चारणमात्रसे संतुष्ट होकर भगवान् विष्णु प्रकट होकर दर्शन देते हैं और अभीष्ट वर प्रदान करते हैं[2]। नवमी, अमावास्या, सप्तमी, रविवार, संक्रान्ति तथा ग्रहणके दिन आँवलेसे स्नान नहीं करना चाहिये[3]।

बृहद्धर्मपुराण आदिमें आमलक-वृक्षके पूजन-स्तवन आदिका विधान वर्णित है और एक सुन्दर स्तोत्र भी दिया गया है, जिसमें इसे ब्रह्माका स्वरूप माना गया है। आँवलेके वृक्षके नीचे बैठकर जप-ध्यान, उपासना आदि करनेसे शीघ्र सिद्धि मिलती है। जैसे कि वट, पीपल तथा तुलसी आदि वृक्षोंके आश्रयसे मिलती है। अक्षयनवमीके दिन स्त्रियाँ सौभाग्य एवं समृद्धिके लिये आँवलेकी पूजाकर उसमें मङ्गल-सूत्र आदि लपेटती हैं तथा परिक्रमा करती हैं। इस प्रकार आँवला भावशुद्धि, धर्मसिद्धि, आरोग्य-वृद्धिमें सभी प्रकारसे सहायक होता है। अतः देवस्वरूप आमलक वन्द्य-पूज्य एवं आराध्य है। आमलकी-वृक्षको नमस्कार करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

नमाम्यामलकीं देवीं पत्रमालाद्यलंकृताम्।
शिवविष्णुप्रियां दिव्यां श्रीमतीं सुन्दरप्रभाम्॥

(बृहद्धर्मपुराण)

'विषयोंमें सुख होता तो बड़े-बड़े धनी, भोगी और पदाधिकारी भी सुखी होते। पर विचारपूर्वक देखनेपर पता चलता है कि वे भी दुःखी ही हैं। पदार्थोंमें शान्ति है नहीं, हुई नहीं, होगी नहीं और हो सकती नहीं। विचारशील व्यक्तिको पद-पदपर अनुभव होता है कि इनमें सुख नहीं है।'

—स्वामी श्रीरामसुखदासजी ('जीवनका कर्तव्य'-पुस्तकसे)

१-धात्रीफलं परं पूतं सर्वलोकेषु विश्रुतम्। यस्य रोपान्नरो नारी मुच्यते जन्मबन्धनात्॥
पावनं वासुदेवस्य फलं प्रीतिकरं शुभम्। अस्य भक्षणमात्रेण मुच्यते सर्वकल्मषात्॥
भक्षणे च भवेदायुः पाने वै धर्मसंचयः। अलक्ष्मीनाशनं स्नाने सर्वैश्वर्यमवाप्नुयात्॥ (पद्म०, सृष्टि० ६२। २-४)

२-धात्रीदर्शनसंस्पर्शान्नाम्नः उच्चारणेऽपि वा। वरदः सम्मुखो विष्णुः संतुष्टो भवति प्रियः॥ (पद्म०, सृष्टि० ६२। १३)

३-नवम्यां दर्शे सप्तम्यां संक्रान्तौ रविवासरे। चन्द्रसूर्योपरागे च स्नानमामलकैस्त्यजेत्॥ (स्कन्दपु०, कार्ति०मा० १२। ७५)

कहानी—

स्वाध्याय

[स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः]

'चैतन्य महाप्रभु जब दक्षिणकी यात्रा करने गये थे, तब एक स्थानपर उन्होंने एक ब्राह्मणको श्रीमद्भगवद्गीताका पाठ करते देखा। ब्राह्मण सम्भवतः संस्कृत नहीं जानता था, क्योंकि वह श्लोकोंका शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाता था। लेकिन पाठके समय उसके नेत्रोंसे अजस्र अश्रुप्रवाह चल रहा था। महाप्रभु उसके पीछे पाठ समाप्त होनेतक खड़े रहे और जब वह पाठ समाप्त करके अपने समीप एक संन्यासीको देख उन्हें प्रणिपात करने लगा तो महाप्रभुने 'श्रीहरिः' कहकर उसे आशीर्वाद देनेके पश्चात् पूछा—'विप्रवर ! आप गीताजीके श्लोकोंको समझते हैं ?' ब्राह्मणने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'भगवन् ! मैं अज्ञ भला इन गूढ़ श्लोकोंको क्या जानूँ। मैं तो इनको पढ़ते समय यह देखता हूँ कि एक रथपर अर्जुन धनुष-बाण डाले बैठे हैं और श्यामसुन्दर एक हाथमें घोड़ोंकी रास तथा दूसरेमें चाबुक लिये रथके आगे बैठे हैं तथा अर्जुनकी ओर मुख घुमाकर कुछ कह रहे हैं। उनके पतले-पतले लाल-लाल होठ बोलते समय बड़ी सुन्दरतासे हिल रहे हैं। यही देखते-देखते मैं भूल जाता हूँ कि पाठ समाप्त भी करना है।' महाप्रभु बच्चोंकी भाँति फूट पड़े। रोते-रोते ब्राह्मणको हृदयसे लगाया। उन्होंने कहा—'गीताजीका ठीक-ठीक अर्थ केवल तुम्हींने समझा है।' क्या तुम कह सकते हो कि उस विप्रकी भाँति तुमने एक दिन भी सप्तशतीका स्वाध्याय किया है ?'

'भगवन् ! मैंने इस प्रकार तो स्वाध्याय नहीं किया।'

'तब तुम कैसे कहते हो कि मा तुमपर प्रसन्न नहीं होतीं ? मा और अप्रसन्न ! बच्चे ! मा तो प्रसन्नताकी मूर्तिका दूसरा नाम है। वह करुणामयी नित्य प्रसन्न हैं। तुम उन्हें सचमुच कभी पुकारते ही नहीं। ऐसा कैसे हो सकता है कि तुम पुकारो और मा आयें नहीं ?

'किंतु मैंने तो।'

'रुको ! तुमने दुर्गासप्तशतीके पाठ सविधि समाप्त कर दिये और नवाक्षर बीजमन्त्रोंका जप भी किया हवन-तर्पणके साथ। यही तो तुम कहना चाहते हो ? पर सच कहो क्या तुम्हारे मनमें श्रद्धा थी ? मन एकाग्र और प्रेमसे पूर्ण था ? तुम बता सकते हो कि यदि ग्रामोफोनमें सप्तशतीके रेकार्ड बनाकर सहस्र बार बजाये जायँ तो मा आयेंगी या नहीं ?'

'भला रेकार्ड बजानेसे मा कैसे आयेंगी ?'

'ठीक—रेकार्ड बजानेसे मा नहीं आ सकतीं, क्योंकि वह जड है और उससे क्रियामात्र होती है—भावहीन। मा, क्रियाधीन या कर्मपरतन्त्र नहीं हैं। वे यदि परतन्त्र हैं भी तो भाव या प्रेमपरतन्त्र। इसीसे रेकार्ड बजानेपर नहीं आतीं और तुम्हारी पूजापर उन्हें आना चाहिये क्यों ?'

'मैं ऐसा ही सोचता हूँ।'

'अब बताओ कि तुम्हारा पाठ और जप रेकार्डकी भाँति रटंत हुआ या मानवकी भाँति प्रेमपूर्ण भाव तथा एकाग्र-चित्तसे ?'

'गुरुदेव ! मुझे अपने प्रश्नका उत्तर तो प्राप्त हो गया, लेकिन श्रीचरणोंने आदेश किया था कि स्वाध्यायमात्रसे इष्ट देवताका साक्षात् होता है !'

'मैंने कहा अवश्य था, किंतु कहा था मानवके लिये। स्वाध्यायमात्रका अर्थ दूसरे साधनोंकी अपेक्षा बिना केवल स्वाध्यायसे, यह कहना था। पहले स्वाध्यायको समझ लो। जिसकी आवृत्ति करते-करते उसे हृदयका एक भाग बना लिया जाय, जो अपने हृदयका एक अध्याय हो जाय, वही स्वाध्याय है। फिर चाहे वह मन्त्र-जप हो या ग्रन्थ-पाठ। ऐसे ही स्वाध्यायसे आराध्यकी प्राप्ति अथवा इष्ट-सिद्धि होती है।'

× × ×

हम सबकी भाँति महेशने भी आध्यात्मिक पुस्तकोंको यों ही सूँघ लिया था। कुछ सुन-सुना लिया था। पिता मा दुर्गाके उपासक थे, घरमें माताके गुणोंका वर्णन होता ही रहता था। बचपनसे पिताने दुर्गाकवच रटा दिया था। भयके ही कारण सही, महेश उसका नित्य पाठ करता था। बचपनके संस्कार धीरे-धीरे वैसा ही सुसंग पाकर पुष्ट होते गये। अब महेशको माताके अतिरिक्त दूसरे किसीकी चर्चा भाती नहीं थी।

घरपर अन्न-वस्त्रका अभाव था नहीं, पत्नी भी अनुकूल मिली थी। यों तो जीवन, अतृप्तिका एक नाम है ही, फिर भी

महेश उतना हाय-हाय करनेवाला नहीं था। दूसरे, पिताने बराबर उसे समझाया था कि सर्वेश्वरी जगन्मातासे उसकी 'मंगल मंजुल गोद' माँगनेके अतिरिक्त दूसरे तुच्छ सांसारिक पदार्थ माँगना महामूर्खता है। 'जब हम जगन्माताके राजकुमार हो सकते हैं तो भिखमंगे क्यों बनें ?' महेशको इस भिक्षुक मनोवृत्तिसे घृणा थी। वह चाहता था केवल माताका दर्शन।

एक चाह होती है और दूसरी होती है भूख। हम संसारमें जाने क्या-क्या चाहते हैं, यदि कोई बिना हाथ-पैर हिलाये दे दे तो। लेकिन जिसके लिये हम भूखे होते हैं, उसके लिये आकाश-पाताल एक कर डालते हैं। महेशमें माताके दर्शनोंकी जो चाह थी, वह बढ़ी और बढ़ते-बढ़ते भूख बन गयी।

पिताका शरीरान्त होनेसे घरका सारा भार महेशके ही सिर आ गया। वह अब स्वयं पिता बन चुका था, इससे उसका दायित्व और भी बढ़ गया था। घरके जंजालोंसे अवसर ही नहीं मिलता था। कई बार विन्ध्याचल जानेका विचार हुआ, किंतु जा न सका। 'ये कार्य तो जीवनभर अवकाश न देंगे।' यह सोचकर उसने जानेका निश्चय ही कर लिया। जहाँ निश्चयमें शक्ति है, वहाँ बाधा क्या ?

अष्टभुजाके दर्शन करके जब वह मन्दिरसे निकला तो उसने पंडेसे पूछा—'इस रमणीक वनमें कोई महात्मा भी रहते हैं ?' पता लगा कि पहाड़ीके उस ओर यहाँसे तीन-चार मीलपर एक अच्छे सिद्ध महापुरुष रहते हैं, लेकिन वहाँ जानेका मार्ग बड़ा कठिन है। महेशने कठिनाइयोंकी चर्चा व्यर्थ समझी। वह पंडेकी बतायी पगडंडीसे चल पड़ा। झाड़ियोंमें झुकते, कण्टकोंमें उलझते, ऊँची-नीची चट्टानोंपर चढ़ते-उतरते किसी प्रकार वह उस गहन वनकी एकान्त फूसकी कुटियामें पहुँच गया।

एक तूँबी, एक कुल्हाड़ी, चिमटा, मृगचर्म और धूनीके पास कुछ काष्ठ, बस वहाँ इतना ही सामान था। जगत्के नेत्रोंसे दूर वहाँ एक जटा-भस्मधारी श्यामकाय महापुरुष धूनीके समीप दिगम्बर शवित-आसनपर बैठे थे। हाथोंमें रुद्राक्षकी माला घूम रही थी। महेशने साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। महापुरुषके नेत्र उठे। उस बेधक एवं गम्भीर दृष्टिने सब समझ लिया। 'तू आ गया यहाँ ? कैसे आया है ?'

'श्रीचरणोंके दर्शनार्थ !' एक क्षण रुककर महेशने पुनः हाथ जोड़कर पूछा—'प्रभो ! क्या इस अधमको भी मा अपनायेंगी ? मैं भी उनके पादपद्मोंके दर्शन पा सकता हूँ ?'

महात्मा मुसकराये 'अवश्य ! स्वाध्याय करो ! इष्टकी सिद्धि जप और पाठसे ही होती है।'

महेशने अनुनय किया और उसे दुर्गासप्तशतीके अष्टोत्तरशत पाठ तथा नवाक्षर बीजमन्त्रके जपका आदेश हुआ। 'तुम आओगे' यह माताने प्रथम ही मुझे सूचित किया था। अब जाओ ! दिन ढल रहा है, बस्तीतक अँधेरा होनेसे पूर्व पहुँचना ठीक होगा। जंगल तो हम जंगली लोगोंके लिये ही उपयुक्त है।

महेशने पुनः साष्टाङ्ग प्रणिपात किया और धूनीसे निकली प्रसादस्वरूप भस्मको वस्त्रमें बाँधकर लौटा।

वह घर आया और पहुँचनेके तीन दिन पश्चात् ही उसने विधिपूर्वक फलाहार एवं भूमि-शयन करते हुए सप्तशतीका पाठ और जप प्रारम्भ कर दिया। कुल एक सौ आठ ही पाठ तो करने थे, पूरे हो गये। जप भी समाप्त हो गया, पर माताका साक्षात् हुआ नहीं।

'मुझसे विधिमें कोई त्रुटि हुई नहीं, माने दर्शन क्यों नहीं दिया ?' गुरुके वचनोंपर अविश्वासके लिये हृदयमें स्थान नहीं था। अपनी त्रुटिका स्वयं ज्ञान न होनेपर वह फिर गुरुदेवके चरणोंमें उपस्थित होने विन्ध्याचलको चला।

× × ×

पाठ-पाठमें भी भेद होता है। सप्तशतीका पाठ तो सभी करते हैं, किंतु महेशजीका पाठ कुछ और ही ढंगका है। वे श्लोकोंको केवल वाणीसे पढ़ नहीं जाते, हृदयसे उनका पाठ करते हैं। जिन सात सौ श्लोकोंको पण्डितलोग एक घंटेमें समाप्त कर देते हैं, उन्हींमें लगते उन्हें पूरे सात घंटे। पाठके पश्चात् जब जप प्रारम्भ होता—दूसरा ही कोई उनसे बार-बार भोजनके लिये आग्रह करता तो वे उठ पाते। अन्यथा उन्हें स्मरण ही नहीं होता कि कुछ और भी संसारमें मुझको करना है।

दुर्गापाठके उन सीधे-सादे श्लोकोंकी स्फूर्ति जब हृदयसे होती, पता नहीं कितने गुरुतर गम्भीर अर्थोंका उनसे उद्भव होता। वे गहन तत्त्व जो हम सब बड़े-बड़े भाष्योंके द्वारा भी

समझ नहीं पाते, दीर्घकालीन शास्त्रोंके पठन-पाठनसे भी कठिनतासे उपलब्ध होते हैं, महेशजीको उन श्लोकोंमें सरलतासे प्राप्त हो जाते थे। इसे चाहे माकी कृपा कहिये या एकाग्रताका परिणाम।

धीरे-धीरे वासनाएँ शान्त होती गयीं और दशा यहाँतक पहुँच गयी कि 'माका दर्शन हो' यह इच्छा भी पता नहीं कहाँ चली गयी। पाठमें स्वाभाविक रुचि थी और जपमें आनन्द आता था। यह भूल ही गया कि पाठ कितना हुआ और जप कितना ? जब कभी महेशजी गुनगुनाते रहते—

सब कुछ ले लो किंतु—तुम्हारी पूजाका अधिकार रहे।
प्यार रहे न रहे पर प्रिय, मुझपर पूजाका भार रहे॥

एक दिन प्रातःकाल सदाकी भाँति उनके कमरेका द्वार खुला नहीं। पत्नी घबड़ायी और आठ बजते-बजतेतक जब पुकारनेपर भी द्वार न खुला तो उसने बढ़ईसे किवाड़ तुड़वा दिये। महेशजीके नेत्रोंसे गङ्गा-यमुना बह रही थीं। वे किसी दूसरे ही लोकमें थे। बड़ी देरमें वे प्रकृतिस्थ हुए।

लोग कहते हैं कि महेशजी रात्रिमें कमरा बंद करनेपर 'मा, मा' कहकर प्रायः किसीसे बातें किया करते हैं।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

साधकोंसे

······ अपने दोषोंका दीखने लगना साधनस्तरमें चढ़नेकी इच्छाका लक्षण है, दोषोंका दीखते रहना दोषनाशकी प्रवृत्तिका कारण है, दोषोंके लिये जीमें जलन पैदा हो जाना दोष-नाशका आरम्भ हो जाना है, जरा-से भी दोषका हृदयमें सदा शेल-सा चुभना दोषोंसे बहुत-कुछ मुक्त हो जानेका लक्षण है और दूसरेके दोषोंका सर्वथा न दीखना एवं अपने दोषनाशकी भी स्मृति न रहना दोषोंका नाश है। दोषोंका सर्वथा नाश और भगवान्‌का सर्वदा सर्वत्र दर्शन प्रायः एक ही कालमें होनेवाली स्थिति है। आपलोगोंको अपने दोष दीखते रहते हैं और खटकते भी हैं, यह शुभ लक्षण है। परंतु इतनेसे ही संतुष्ट न हो जाइये। जबतक जरा-सा भी विकार मनमें होता है, तबतक दोषके बीजका नाश नहीं हुआ है। जहाँ बीज है, वहाँ अनुकूल संयोग मिलनेपर उसके अङ्कुरित होने और फूलने-फलनेमें कौन देर लगती है। दोषका बीजनाश करनेकी चेष्टा कीजिये। यह दोष-बीजनाश भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे होता है और उनकी अपार तथा अनन्त कृपाका अनुभव करनेसे ही कृपा फलवती होती है। अतएव पद-पदपर और पल-पलमें भगवान्‌की अपार कृपाका अनुभव करते रहना चाहिये। उनके सर्वदोषहर वरद कोमल करकमलको सदा अपने सिरपर समझना चाहिये, और उनके अपरिमित बलसे अपनेको सदा बलवान् मानकर पाप-तापकी स्फुरणातकको नष्ट कर देना चाहिये। उनके बलके सामने पाप-तापका बल किस गिनतीमें है। भगवान्‌के नाममें पूरा आनन्द नहीं आता, इसका कारण यही है कि भगवान्‌में अभीतक प्रियतम-बुद्धि नहीं है। जिसमें प्रियतम बुद्धि हो जाती है, उसके नामकी तो बात ही निराली है, उसकी फटी जूतीका चिथड़ातक अत्यन्त प्यारा लगता है। भगवान्‌में प्रियतम-बुद्धि हो जानेपर उनके सारे जगत्‌में—भयानक जगत्‌में भी उन्हींके नाते अत्यन्त प्रेम हो जायगा, और सभी वस्तुएँ आनन्ददायिनी बन जायँगी, क्योंकि सबमें फिर उन्हीं परम प्रियतमका सम्बन्ध दीख पड़ेगा, सभी उनके करकमलोंसे संस्पृष्ट जान पड़ेंगी। फिर नाम परम मधुर हो जायगा। नाम सुनानेवाला परम प्रिय और परम पूज्य जान पड़ेगा। उनकी स्मृति करा देनेवालेके चरणोंमें चित्त लुट पड़ेगा।

बड़े भाग्यसे गङ्गाका विमल तट, तीर्थराजकी पावन भूमि, दिन-रात श्रीभगवन्नामके श्रवण-कीर्तनका संयोग प्राप्त होता है। यह श्रीभगवान्‌की कृपाका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इससे पूरा लाभ उठाइये। तन-मन-वाणीको, प्रत्येक इन्द्रियको भगवान्‌की ओर लगा दीजिये। ऐसा तन्मय हो जाना चाहिये कि आपलोगोंको देखकर दूसरोंमें भी उत्साह उमड़ आये।

मान-बड़ाईकी चाहका चित्तमें न रहना ही आश्चर्य है, रहनेमें कुछ भी आश्चर्य नहीं। हाँ, चोरीसे चित्तमें छिपी हुई इस चाहको जितनी ही सावधानीसे बार-बार बाहर निकाला जाय, उतना ही उत्तम है। और भगवान्‌की कृपासे ही ऐसा हो सकता है। यह भी भगवान्‌की कृपा ही समझिये कि आपलोगोंको मान-बड़ाईकी चाहका पता लग गया है। इसे

भगवान्‌के बलसे प्राप्त दैन्य, विनय, शील, सौजन्य, अपने दोषोंको देखनेकी सतत प्रवृत्ति और अपरिमित आत्मबल आदि हथियारोंसे तुरंत मार हटाना चाहिये।

सब साधकोंको अपनेसे बड़ा समझकर सबका सम्मान करना चाहिये। स्वयं सच्चे मनसे अमानी बनकर सबको मान देना चाहिये। मन, नेत्र और क्रियामें कहीं काम-क्रोधका अङ्कुर भी न आ जाय, इसके लिये बड़ी सावधानीसे सर्वदा सचेत रहना चाहिये। आलस्य और प्रमाद भी न हो। ऐसा निश्चय होना चाहिये कि इस अवधिमें ही भगवान् हमारे चिरकालके मनोरथको पूर्ण कर देंगे। सच्चा विश्वास होनेपर भगवत्कृपासे ऐसा होना कुछ भी बड़ी बात नहीं है। भगवान्‌ने कहा है कि 'महान् दुराचारी भी अपने शेष जीवनको मुझमें लगानेका निश्चय करके अनन्य-चित्तसे मेरा चिन्तन करता है तो वह साधु ही है, और बहुत ही शीघ्र—पलक मारते-मारते वह धर्मात्मा होकर शाश्वती शान्तिको प्राप्त हो जाता है।'

भगवान्‌के आश्वासन-वचनोंपर विश्वास करके हमें उनके अनन्य-चिन्तनमें दृढ़ निश्चयपूर्वक लग जाना चाहिये। और वहाँ आपको करना ही क्या है ?

(२)

अपने दोषोंपर विचार करो

पत्र मिला। आपने अपने दुःखके जो कारण लिखे वे तो बाहरी हैं। असली कारण तो आपका अपना उच्छृङ्खल मन ही है। जो मनुष्य दूसरोंके प्रति मनमें बुरे भावोंका पोषण करता है, उसको दूसरोंसे बुरे भाव, प्रतिहिंसा, वैर आदि मिलनेका भय लगा ही रहता है। वह आप ही अपने लिये दुःखोंको बुलाता है। इतना ही नहीं, वह जगत्‌में भी दुःख ही फैलाता है। जिसके अंदर जैसे विचार या भाव होते हैं, उसके वचनोंसे, आकृतिसे, भावभंगीसे वही विचार प्रतिक्षण बाहर निकलते रहते हैं। उसके रोम-रोमसे स्वाभाविक ही वैसे ही परमाणु प्रकट हो-होकर दूर-दूरतक फैलते हैं और न्यूनाधिक-रूपमें सबपर अपना प्रभाव डालते हैं। सजातीय विचार-वालोंपर अधिक और विजातीय विचारवालोंपर कम। जैसे प्लेग, चेचक और हैजे आदि रोगोंके कीटाणु सर्वत्र फैलकर रोग फैला देते हैं वैसे ही मनुष्यके अंदर रहनेवाले घृणा, द्वेष, भय, वैर, शोक, विषाद, चिन्ता, क्रोध, काम, लोभ, डाह आदि मानसिक रोगोंके परमाणु भी सर्वत्र फैलकर लोगोंको रोगी बनाते हैं। आपके घरमें जो कलह है, इसमें केवल दूसरे पक्षका ही दोष हो, ऐसी बात नहीं माननी चाहिये और वस्तुतः ऐसा है भी नहीं, उसमें आपका भी दोष है और वही कलह फैलाकर आपको और घरके दूसरे लोगोंको दुःखी बना रहा है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥
बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥

(६।५-६)

'आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है। जिसके द्वारा मन, वाणी आदि जीते हुए हैं, वह तो आप ही अपना मित्र है और जिसके द्वारा नहीं जीते हुए हैं, उसने आप ही अपने साथ शत्रुकी तरह वैर ठान रखा है।'

जैसा अभ्यास होता है, मन वैसा ही बन जाता है। दोष-दर्शनका अभ्यास हो जानेपर दोष हुए बिना ही लोगोंमें दोष दीखने लगते हैं, इसलिये यह तो कठिन है कि इस पत्रके पढ़ते ही आपको दूसरोंके दोष दीखने बंद हो जायँ। ऐसा हो जाय तो बड़े ही आनन्दकी बात है, परंतु आशा कम है। अतएव आप शान्ति और धीरजके साथ अपने दोषोंको भी खोजने और देखनेका प्रयत्न कीजिये। जहाँ अपने दोष दीखने लगेंगे, वहीं दूसरोंके दोष दीखने कम होने लगेंगे। फिर आगे चलकर यह दशा हो जायगी—

बुरा जो देखन मैं गया बुरा न दीखा कोय।
जो तन देखा आपना मुझ-सा बुरा न कोय॥

और जब दूसरोंके दोषकी बात याद ही न रहेगी और सब तरहसे अपने ही दोष—अपराध प्रत्यक्ष सामने रहेंगे, तब तो स्वाभाविक ही अपने दोषोंके लिये पश्चात्ताप होगा और नम्रतापूर्वक सबसे क्षमा चाहनेकी प्रवृत्ति बलवती हो उठेगी। चैतन्य महाप्रभुसे दया पाये हुए जगाई-मधाईका अन्तिम जीवन रो-रोकर सबसे क्षमा चाहनेमें ही बीता था। वे पश्चात्ताप और करुणाकी मूर्ति ही बन गये थे।

आपसे प्रेम है और आप मेरे कहनेको बुरा न मानकर उसे अच्छी दृष्टिसे देखेंगे तथा विचार करेंगे, यही समझकर आपको इतना लिखनेका साहस किया गया है।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

श्रीराम-नाम-स्मरणके चमत्कारकी प्रत्यक्ष अनुभूति

घटना उस समयकी है जब स्वामी श्रीअनन्ताचार्यजी महाराज श्रीभागवत-सप्ताह, श्रीराम-कथा एवं श्रीमद्भगवद्गीता आदिपर प्रवचनोंके लिये मेलबोर्न (आस्ट्रेलिया) पधारे हुए थे। इस आयोजनके उपरान्त ऐसे ही अन्य भगवत्कथा-चर्चाके आयोजन सिडनी, एडिलेड आदि नगरोंमें भी आयोजित थे।

स्वामीजीकी मुझपर विशेष कृपा थी, इसलिये उन्होंने मुझसे भी एडिलेडमें होनेवाले सत्संगमें चलनेके लिये कहा। १४ जून १९९१ को प्रातःकाल ९ बजे स्वामीजीके शिष्य श्रीराजाराम शर्माजीकी गाड़ीमें जिसके चालक शर्माजी स्वयं थे, स्वामीजीके साथ हमलोगोंने एडिलेडके लिये प्रस्थान किया। स्वामीजी शर्माजीकी बगलमें बैठे और मैं शर्माजीके ठीक पीछेवाली सीटपर बैठा था। मार्गमें स्वामीजीद्वारा हरिचर्चा एवं नाम-स्मरण तथा संकीर्तन होता रहा। लगभग एक हजार कि०मी० की लंबी यात्रा थी। मेरे विचारमें आया कि निश्चित स्थानपर पहुँचते-पहुँचते सायंकाल हो जायगा और तुरंत ही कथास्थलपर कार्यक्रम आरम्भ हो जायगा। ऐसी स्थितिमें मैं अपना नित्यकर्म पूरा नहीं कर पाऊँगा। अतः मुझे सायंकालीन ध्यान, स्तोत्र-पाठ आदि मार्गमें ही पूर्ण कर लेना चाहिये। यह सोचकर मैं श्रीरामरक्षास्तोत्र, हनुमानचालीसा, बजरंगबाण, श्रीविश्वनाथाष्टक तथा श्रीदेवीकवच आदिका पाठ करने लगा। अचानक भीषण धमाकेकी आवाजसे गाड़ीने धक्का खाया, क्षणभरको बेहोशी-सी छा गयी। किंतु इस स्थितिमें भी मेरे मुँहसे अनजाने ही सीताराम-सीताराम निकल रहा था।

हुआ यह कि एडिलेडसे मेलबोर्न आनेवाली एक महिलाकी अत्यन्त तीव्र गतिसे आ रही कार हमारी गाड़ीसे बुरी तरह टकरा गयी। परिणामस्वरूप दोनों गाड़ियाँ चकनाचूर हो गयीं। हमलोगोंकी गाड़ी बुरी तरहसे उलटी और दो बार ऊपरसे नीचे आकर बगलकी तरफ गिरकर लुढ़क पड़ी। मेरे दोनों पैर त[illegible] सीट-बेल्टसे बँधी थी। श्रीरामरक्षास्तोत्र, श्रीहनुमानचालीसा, श्रीदुर्गाकवच तथा श्रीविष्णुसहस्रनामके फोटोकापी-कृत पत्रे हाथसे छूटकर तितर-बितर हो गये थे। वस्तुस्थितिका बोध होनेपर मैं सीट-बेल्टसे मुक्त होनेका प्रयास करने लगा। स्वामीजी तथा शर्माजी मेरी स्थिति देखकर कुछ अनिष्टकी आशङ्कामें थे, पर मैं किसी प्रकार गाड़ीसे बाहर निकला।

सड़कपर यह भीषण दुर्घटना देखकर लोगोंकी भीड़ जमा हो गयी और पुलिस-एम्बुलेंस भी आ गयी। हमलोगोंको अस्पताल ले जाया गया। एक्स-रे एवं अन्य परीक्षणोंसे पता चला कि मात्र सामान्य खरोंच आदिके अतिरिक्त किसीको कोई गम्भीर चोट नहीं आयी है। तीन घंटे अस्पतालमें लगे। अब हमलोग प्रायः स्वस्थ हो गये थे। अब प्रश्न था कि चिकित्सकोंद्वारा पूर्ण विश्राम करनेके निर्देशपर हमलोग मेलबोर्न लौटें या एडिलेड जायँ। गाड़ी भी नहीं थी। चूँकि श्रीरामरक्षास्तोत्र और उनके नाम-स्मरणने हमें साक्षात् मृत्युके मुखसे बचाया था, अतः हमने निश्चय किया कि जब इतनी भारी दुर्घटनामें प्रभुके नाम-स्मरणने हमारी रक्षा की तो अब जो भी हो हमें एडिलेडके सत्संग-समारोहमें अवश्य जाना ही चाहिये। किरायेकी गाड़ी लेकर हमलोग देर रात्रि लगभग १२ बजे एडिलेड पहुँचे। विलम्ब हो जानेसे वहाँका कार्यक्रम स्थगित करना पड़ा। दूसरे दिन प्रातःकालसे सत्संग और प्रवचनका कार्यक्रम सकुशल सम्पन्न हुआ।

दुर्घटनाकी सूचना मेलबोर्नमें पाते ही मेरी पत्नीने एडिलेड श्रीस्वामीजीसे कुशल-समाचारके लिये दूरभाषद्वारा बात की। हमलोगोंकी प्राणरक्षा जानकर वह भावविह्वल सकरुण-हृदयसे भगवान्‌की अहैतुकी कृपाको स्मरण करने लगी। प्रसन्न-मनसे उसके कहनेपर भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये चौबीस घंटेका कलिसंतरण महामन्त्र—*हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥'* के अखण्ड संकीर्तनका आयोजन हुआ।

हमारे अनेक भाइयों तथा दुर्घटना-स्थलपर उपस्थित पुलिस, जनता एवं चिकित्सकोंको महान् आश्चर्य हुआ कि इस भयंकर दुर्घटनामें जबकि दोनों ही गाड़ियाँ पूर्णतया नष्ट हो गयीं, [illegible] तीनों व्यक्तियों तथा दूसरी गाड़ीमें बैठी

महिलाको कोई गम्भीर चोट नहीं लगी। ये सभी किसी दैवी चमत्कारसे ही बच निकले। परम करुणामयकी इस दयाका स्मरणकर हमलोग अनेक बार भावविह्वल हुए। उनकी अपार लीला एवं रहस्यको तो वे ही जानते हैं। धन्य है वह 'क्षण' जिसमें प्रभुका स्मरण होता है और धन्य है वह स्थान जहाँ संत-समागम होता है।

—डॉ॰ रमाशंकर

(२)

चाय सेवन—कितना भयावह ?

आजकल चाय पीनेका प्रचार अधिकाधिक रूपसे बढ़ता जा रहा है। प्रायः सभी लोग चाय पीनेके अभ्यस्त होते जा रहे हैं। चाय पीनेका अभ्यास एक प्रकारका व्यसन है, जो प्रत्येक व्यक्तिके लिये स्वास्थ्यकी दृष्टिसे तथा अन्य कई दृष्टियोंसे हानिकारक है। चायके सम्बन्धमें कुछ जानकारियाँ इधर प्रकाशमें आयी हैं, जो अत्यन्त भयावह हैं। उनमेंसे सूचनार्थ एक यहाँ प्रकाशित की जा रही है—

कुछ दिनोंपूर्व मुजफ्फरनगरमें पुलिसने छापे मारकर मृत पशुओंकी खाल पीसकर नकली चाय बनानेवाले कारखानेका पता लगाकर वहाँसे भारी मात्रामें नकली चाय बरामद की है। इस सम्बन्धमें एक चाय-कंपनीके मालिकसहित छः व्यक्तियोंको गिरफ्तार किया गया है।

पुलिसके अनुसार सूचना मिलनेपर एक चाय-कंपनीमें छापा मारा गया तो कंपनीके मालिककी निशानदेहीपर कई व्यापारिक संस्थाओंसे भारी मात्रामें नकली चाय बरामद की गयी। इसके अतिरिक्त एक लाखसे अधिक चाय लेबिलके थैले भी बरामद किये हैं, जिनमें नकली चाय भरकर बाजारोंमें बेचा जा रहा था। यह चाय कम दामके कारण अधिक बिक रही थी। गिरफ्तार किये गये व्यापारियोंने पुलिसको बताया कि वह पहले मरे हुए पशुओंकी खाल पीसकर बुरादेके साथमें मिलाते हैं। इसके बाद इसपर कोकाकोला रंग चढ़ाकर बाजारमें तैयार नकली चाय भारी मात्रामें बेचते थे, क्योंकि असली चायकी कीमतके मुकाबले इस चायकी कीमत कम होनेसे इसकी बाजारमें काफी खपत हो रही थी।

चिकित्सकोंने चायका निरीक्षण करनेके बाद बताया कि इस चायमें जहरकी मात्रा होनेके कारण इस चायको लगातार दो-तीन माहतक पीनेसे कैंसर-जैसी घातक बीमारी हो सकती है और इससे लोग अन्य घातक बीमारियोंके भी शिकार हो सकते हैं।

प्रेषक—चेतनप्रकाश गोयल

(३)

आदर्श ईमानदारी और हृदयकी विशालता

घटना लगभग बहुत पुरानी है। त्योहारका दिन था। दादीजी अपनी बहुओंके साथ हमारे घर आयी थीं। मेहमानोंका स्वागत हो रहा था। इतनेमें ही तमाम हँसी उदासीमें बदल गयी। सबको यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि बड़ी बहूका सोनेका कीमती हार नहीं मिल रहा है। उनके ख्यालसे वह हमारे घर आनेके पहले था और गिरा भी होगा तो यहीं हमारे घरके आस-पास ही कहीं। मैं स्कूल गया था। माताजीका चेहरा फक पड़ गया। सभीने हार ढूँढ़नेकी यथासाध्य पूरी कोशिश की, पर सब व्यर्थ!

उनके घरपर खबर पहुँची और उनके घरवालोंने तत्काल पुलिसमें इत्तिला कर दी और दूसरे ही दिन हमारे शहरके समाचार-पत्रोंमें भी विज्ञापन दे दिया गया। इससे हार खोनेकी बात सबको मालूम हो गयी। तीसरे दिनकी घटना है। उनके घरपर सब उदास थे। किसीका भी काममें जी नहीं लग रहा था। इतनेमें एक सज्जन उनके घर पहुँचे और उन्होंने उनका सोनेका कीमती हार देकर कहा कि विज्ञापन पढ़कर मैं आपको यह हार देने आ गया। पता और परिचय बतानेसे उन्होंने साफ इनकार किया। केवल इतना ही कहा कि यह हार उन्हें स्टेशनके पास सड़कपर पड़ा मिला था। फिर समाचार-पत्रसे आपके नामका पता लग गया। परायी वस्तु रखनेका मेरा कोई भी अधिकार नहीं, इसलिये मैं यह आपको लौटा रहा हूँ, इसमें महत्त्वकी कौन-सी बात है। यह तो केवल मानवता है। उक्त सज्जनकी ईमानदारी तथा विशाल हृदयता अनुकरणीय है।

—शामसुन्दर मांगीलाल अग्रवाला

मनन करने योग्य

भूखेको ही अन्न पचता है

हजारों साल पहलेकी बात है। कौसल गणराज्यका बड़ा सुनाम था। राजा उदावर्त काफी कुशाग्र-बुद्धिके थे। वे वीर भी थे और दयालु भी। प्रजा उन्हें खूब चाहती थी।

राजाके मन्त्रीका नाम था द्युतिकीर्ति। वह भी विद्वान् था। कौसल राज्यकी उन्नतिके लिये वह सतत प्रयत्नशील रहता था, उन दिनों ऐसी घनी आबादी न थी। राज्यके कुछ मार्गोंपर घनघोर जंगल छाया था। यहीं ऋषि कणादका आश्रम था। वे ब्रह्मविद्याके महान् ज्ञाता थे। राजाकी ओरसे कणाद ऋषिकी सुविधाओंका पूरा ध्यान रखा जाता था। कभी-कभी उदावर्त स्वयं भी ऋषिके दर्शनके लिये जाते। ऋषिके तेजस्वी स्वरूप, अमित प्रभाव तथा तेजोमयी दीप्तिसे अभिभूत होकर राजाको भी उनसे ब्रह्मविद्याका उपदेश ग्रहण करनेकी तीव्र लालसा जग उठी। अपने मनकी बात राजाने द्युतिकीर्तिको बतायी और आश्रम जानेकी तैयारी करने लगे।

राजभवनसे निकलते समय राजाने मन्त्रीसे कहा— 'देखो, मैंने ऋषिके लिये ढेर सारी मुक्ता-मणियाँ रख ली हैं। इन्हें उपहारस्वरूप दूँगा।'

द्युतिकीर्ति मुसकरा पड़ा। दोनों हँसते-बातचीत करते आश्रममें पहुँचे। ऋषि कणाद ध्यानमें निमग्न थे, राजा और मन्त्री वहीं ठहरकर प्रतीक्षा करने लगे। कुछ समय बाद बाह्य जगत्में लौटनेपर महर्षिने राजा एवं मन्त्रीको देखा। महर्षिने प्रसन्न-मनसे अपने शिष्योंद्वारा उनके आतिथ्यकी व्यवस्था की और आगमनका कारण पूछा।

राजा बोले—'मुनिवर! मैं एक विशेष प्रयोजन लेकर आया हूँ।'

'तो बताइये न।' कणादने सस्नेह कहा।

'ऋषिवर! मैं आपसे ब्रह्मविद्या सीखने आया हूँ।' कहनेके साथ ही राजाने मुक्ता-मणियाँ उनके सामने बिखेर दीं। कणाद अचरजमें पड़ गये। उन्होंने राजासे पूछा—'यह सब किसलिये?'

'आपके लिये उपहार लाया हूँ।' उदावर्तने कहा और ऋषिकी ओर देखने लगे। ऋषि बोले—'राजन्! भला मुझ संन्यासीको इसकी क्या आवश्यकता? आप इन्हें अपने पास ही रखें और विद्या सीखने आप एक साल बाद आयें।'

ऋषिकी बात सुनकर राजाको बड़ा क्रोध हो आया, पर मन्त्री द्युतिकीर्तिके संकेतपर राजा चुप ही रहा। मन्त्रीने धीरेसे समझाया—'राजन्! महात्माओंपर क्रोध करना अनुचित है। एक सालकी शर्त उन्होंने अकारण नहीं लगायी होगी। हमें वापस लौट चलना चाहिये।'

'लेकिन ऐसा क्या कारण हो सकता है?' राजाने पूछा। द्युतिकीर्ति बोला—'महाराज! भूखेको ही अन्न पचता है और धैर्यवान् जिज्ञासुको ही ज्ञानका लाभ मिलता है। कणाद ऋषिने एक वर्षका समय देकर अवश्य आपके धैर्य और जिज्ञासाको परखा है। इसमें क्रोधकी कोई बात नहीं, हमें राजभवन लौट चलना चाहिये।'

द्युतिकीर्तिकी बात राजाको जँच गयी। उन्होंने ऋषिको प्रणाम किया और वापस लौट आये। कई दिनोंतक वह गहरे सोचमें डूबे रहे। फिर राजकाजमें पहलेसे अधिक सक्रिय हो गये। निष्ठा और श्रमने राजाके चेहरेपर एक अनोखी चमक ला दी।

उनके चेहरेकी चमक देखकर मन्त्रीने कहा— 'महाराज! अब चलिये ऋषिके आश्रमपर विद्या सीखने। एक वर्ष पूरा हो चुका है।'

राजा मन्त्रीके साथ जब महर्षिके आश्रममें पहुँचे, तो उनका स्वागत करनेके पश्चात् ऋषिने उन्हें ध्यानसे देखा। फिर कहा—'राजन्! अब आप विद्या सीखनेके योग्य हो गये हैं।' उस समय आपमें राजमद शेष था, अहंकार शेष था, विद्याके प्रति सच्ची जिज्ञासा, सच्ची निष्ठा एवं श्रद्धा नहीं थी। अब आपका अन्तःकरण निर्मल हो चुका है, अब आप ठीक प्रकारसे विद्या ग्रहण कर सकेंगे।' यह सुनकर राजा विनयावनत हो गुरुके चरणोंमें गिर पड़े।

—श्रीबल्लभदासजी बिन्नानी 'ब्रजेश'

श्रीगीता-जयन्ती

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः। सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥

(गीता ६। ३०-३१)

'जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता। जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।'

आजके इस अत्यन्त संकीर्ण स्वार्थपूर्ण जगत्में दूसरेके सुख-दुःखको अपना सुख-दुःख समझनेकी शिक्षा देनेके साथ कर्तव्य-कर्मपर आरूढ़ करानेवाला और कहीं भी आसक्ति-ममता न रखकर केवल भगवत्सेवाके लिये ही यज्ञमय जीवन-यापन करनेकी सत्-शिक्षा देनेवाला सार्वभौम ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता ही है। इसका विश्वमें जितना वास्तविक रूपमें अधिक प्रचार होगा, उतना ही वह सच्चे सुख-शान्तिकी ओर आगे बढ़ सकेगा।

इस वर्ष मार्गशीर्ष शुक्ल ११ शनिवार, दिनाङ्क ५ दिसम्बर १९९२ ई०को श्रीगीता-जयन्तीका महापर्व- दिवस है। इस पर्वपर जनतामें गीता-प्रचारके साथ ही श्रीगीताके अध्ययन—गीताकी शिक्षाको जीवनमें उतारनेकी स्थायी योजना बननी चाहिये। आजके किंकर्तव्यविमूढ़ मोहग्रस्त मानवके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है। इस पर्वके उपलक्ष्यमें श्रीगीतामाता तथा गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्णका शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये नीचे लिखे कार्य यथासाध्य और यथासम्भव देशभरमें सभी छोटे-बड़े स्थानोंमें अवश्य होने चाहिये—

(१) गीता-ग्रन्थ-पूजन।

(२) गीताके वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण तथा गीताको महाभारतमें ग्रथित करनेवाले भगवान् व्यासदेवका पूजन।

(३) गीताका यथासाध्य व्यक्तिगत और सामूहिक पारायण।

(४) गीतातत्त्वको समझने-समझानेके हेतु गीता-प्रचारार्थ एवं समस्त विश्वको दिव्य ज्ञानचक्षु देकर सबको निष्कामभावसे कर्तव्य-परायण बनानेकी महती शिक्षाके लिये इस परम पुण्य दिवसका स्मृतिमहोत्सव मनाना तथा उसके संदर्भमें सभाएँ, प्रवचन, व्याख्यान आदिका आयोजन एवं भगवन्नाम-संकीर्तन आदि करना-कराना।

(५) महाविद्यालयों और विद्यालयोंमें गीता-पाठ, गीतापर व्याख्यान, गीता-परीक्षामें उत्तीर्ण छात्र-छात्राओंको पुरस्कार-वितरण आदि।

(६) प्रत्येक मन्दिर, देवस्थान, धर्मस्थानमें गीता-कथा तथा अपने-अपने इष्ट भगवान्का विशेषरूपसे पूजन और आरती करना।

(७) जहाँ किसी प्रकारकी अड़चन न हो वहाँ श्रीगीताजीकी शोभायात्रा (जुलूस) निकालना।

(८) सम्मान्य लेखक और कवि महोदयोंद्वारा गीता-सम्बन्धी लेखों और सुन्दर कविताओंके द्वारा गीता-प्रचार करने और करानेका संकल्प लेना, तदर्थ प्रेरणा देना और—

(९) देश, काल, पात्र (परिस्थिति)के अनुसार गीता-सम्बन्धी अन्य कार्यक्रम अनुष्ठित होना चाहिये।

—सम्पादक

—★—

श्रीराधाबाबाके प्रति श्रद्धा-सुमन

'कल्याण'के आदि सम्पादक नित्यलीलालीन पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके अनन्य एवं अभिन्न राधाबाबा (श्रीचक्रधरजी महाराज) ने मिती कार्तिक कृष्ण २, दिन मंगलवार, दिनाङ्क १३-१०-९२ को 'गीतावाटिका'-स्थित अपने आसनपर इहलोक-लीलाका संवरण कर लिया।

श्रीबाबा सरलचित्त, मृदु-स्वभाव, उदार-प्रकृति और दयाकी मूर्ति थे। साथ ही तपस्वी-साधक और उच्चकोटिके संत थे। जीवनपर्यन्त काञ्चन-कामिनीसे विलग परम वीतराग बाबाने अपनी चेतनावस्थामें अपने लिये कभी ओषधिका भी उपचार नहीं होने दिया।

वे भाईजीके अभिन्न होनेके साथ-साथ उनके प्रेरणास्रोत भी थे। इस प्रकार 'कल्याण'में आपका योगदान अमित था, जो प्रत्यक्ष न होते हुए भी अपरिमित है।

आत्माके अजर-अमर और अक्षर होनेके कारण यद्यपि पूज्य बाबा आज भी हमारे बीच समुपस्थित हैं, परंतु इस पाञ्चभौतिक शरीरके तिरोधान होनेसे हम सभी आपके सांनिध्यसे वञ्चित हो गये।

इन क्षणोंमें विश्वात्माके रूपमें हम अपने श्रद्धा-सुमन उन्हें अर्पित करते हैं।

—सम्पादक

'कल्याण'के पंद्रहवर्षीय (सावधि) ग्राहक बनिये

'कल्याण'के आजीवन ग्राहकके स्थानपर अब पंद्रहवर्षीय (सावधि) ग्राहक बनाये जाते हैं। सावधि (पंद्रहवर्षीय) सदस्यता-शुल्क रु० ५००.०० (पाँच सौ) अथवा सजिल्द विशेषाङ्कका रु० ६००.०० (छः सौ) मात्र है। व्यक्तिगत एवं संस्थागत दोनों ही रूपोंमें ग्राहक हो सकते हैं। जन-हितैषी इस योजनाके अन्तर्गत अब कोई भी व्यक्ति निर्धारित अवधिके लिये स्वयं, अपने उत्तराधिकारीको अथवा किसी भी संस्था, फर्म या प्रतिष्ठानको भी ग्राहक बना सकता है। पंद्रह वर्षोंतक उत्तराधिकारी, फर्म अथवा संस्थागत ग्राहक बनानेकी छूट होनेसे अब यह योजना पहलेवाली 'आजीवन ग्राहक- योजना'से अधिक सर्वजनोपयोगी, गतिमान् और सुविधाजनक सिद्ध होगी—ऐसी आशा है।

पंद्रह वर्षोंतक यदि 'कल्याण'का प्रकाशन बंद न हुआ तो प्रतिमास अङ्क जाते रहेंगे। पंद्रह वर्षकी अवधि पूरी होनेके बाद भी इच्छुक सज्जन निर्धारित शुल्क-राशि पुनः भेजकर सावधि-ग्राहक हो सकते हैं। निर्धारित अवधि (पंद्रह वर्ष) समाप्त होनेके पूर्व किसी भी कारण और परिस्थितिवश जमा की हुई राशि अथवा उसका कोई अंश लौटाया नहीं जायगा, वरन् आवश्यकतानुसार पता बदलवाकर उत्तराधिकारी भी अब ग्राहक बन सकेंगे। 'कल्याण'के प्रचारार्थ जन-जनको समर्पित इस अभिनव (सावधि)-ग्राहक-योजनासे सभीको अधिकाधिक लाभ उठाकर 'कल्याण'के मूल उद्देश्य—सद्भाव-प्रसारणके पवित्र कार्यमें अपना सक्रिय सहयोग देना चाहिये।

'आजीवन' ग्राहक अब नहीं बनाये जाते, अतएव तदर्थ कोई राशि कृपया न भेजें और तद्विषयक पत्र-व्यवहार भी नहीं करना चाहिये।

एक विशेष निवेदन

आगामी वर्ष (जनवरी, सन् १९९३ ई०) का विशेषाङ्क 'शिवोपासनाङ्क' इस बार यथासमय—जनवरीमें ही प्रकाशित हो—ऐसा हमारा यथाशक्य हरसम्भव प्रयास है। विशेषाङ्कके साथ 'फरवरी' ९३ के साधारण अङ्कका प्रेषण भी जनवरीमें ही सम्भव हो सके—ऐसी चेष्टा की जा रही है। जिन पुराने और नये ग्राहक महानुभावोंने नये वर्षके लिये अपनी शुल्क-राशि यदि अभीतक न भेजी हो तो वे अब कृपया शीघ्रातिशीघ्र भेज दें। विलम्ब करनेपर वी०पी०पी० चले जाने और मनीआर्डरकी राशि कार्यालयको विलम्बसे मिलनेकी दशामें वी०पी०पी० लौटा दिये जानेपर 'कल्याण'को डाकखर्चकी व्यर्थ हानिसहित ग्राहकों एवं कार्यालयको अनावश्यक असुविधा उठानी पड़ सकती है। अतएव हर परिस्थितिमें 'कल्याण'का वार्षिक शुल्क दिसम्बरके प्रथम सप्ताहतक यहाँ अवश्य पहुँच जाना चाहिये।

ग्राहक महानुभावोंसे हमारा यह भी सादर अनुरोध है कि वे अपने परिचितों और प्रेमी मित्रोंको प्रेरणा देकर कम-से-कम दो 'नये ग्राहक' अवश्य बनायें। 'कल्याण'के पावन प्रचारकार्यमें आपका यह सहयोग अति महत्त्वपूर्ण होगा और आपके हम आभारी होंगे।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पो०—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५